धर्मस्थल

प्रियंवद

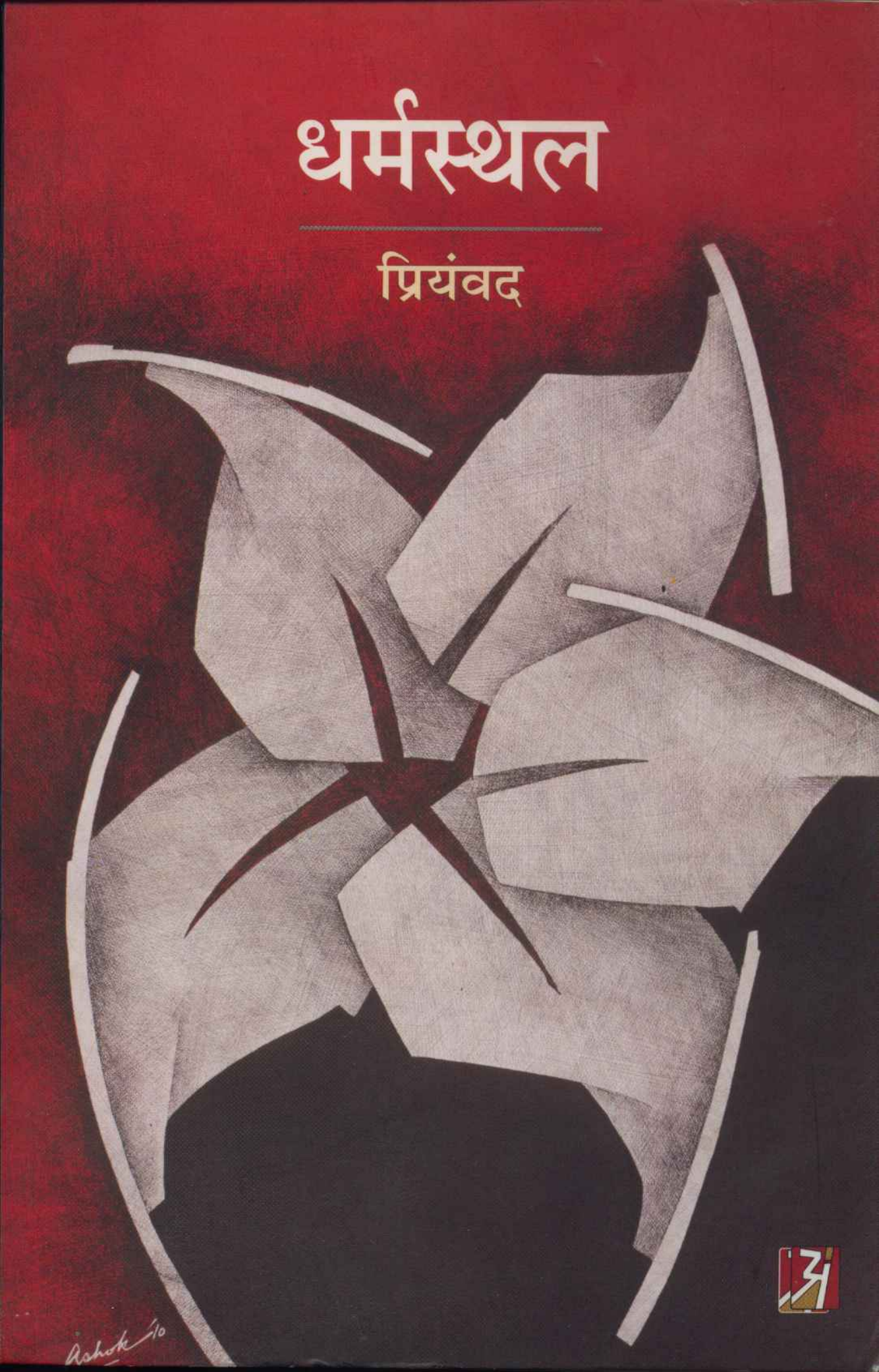

धर्मस्थल

प्रियंवद

जन्म : 22 दिसम्बर, 1952 कानपुर

शिक्षा : एम.ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति)

कृतियाँ : 'वे वहाँ क़ैद हैं', 'परछाई नाच', 'छुट्टी के दिन का कोरस' (उपन्यास), 'एक पवित्र पेड़', 'खरगोश', 'फाल्गुन की एक उपकथा', 'आईना घर' (कहानी-संग्रह), 'भारत विभाजन की अंत:कथा' (इतिहास) आदि पुस्तकें प्रकाशित। 'फाल्गुन की उपकथा' पर आधारित फ़िल्म 'अनवर' (2007) और 'खरगोश' (2008) फ़िल्म का स्क्रिप्ट-लेखन।

कथाक्रम सम्मान और विजय वर्मा पुरस्कार से सम्मानित।

संप्रति, स्वतंत्र लेखन और निजी उद्योग।

संपर्क : 15/269, सिविल लाईन्स, कानपुर-208001 (उ.प्र.)

धर्मस्थल

(उपन्यास)

प्रियंवद

अंतिका प्रकाशन

ISBN 978-93-80044-65-1

धर्मस्थल

© प्रियंवद

पहला पेपरबैक संस्करण : 2011

मूल्य : 110.00 रुपए

प्रकाशक

अंतिका प्रकाशन

सी-56/यूजीएफ-IV, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II

ग़ाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)

फ़ोन : 0120-2648212, 0-9871856053

ई-मेल : antika56@gmail.com

वेबसाइट : www.antika-prakashan.com

आवरण चित्र : अशोक भौमिक

(सौ फूलों को खिलने दो : सहस्त्रदल शृंखला की प्रथम कृति)

मुद्रक : आर.के. आफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

DHARMASTHAL (Novel) by Priyamvad

Published by Antika Prakashan, C-56/UGF-IV, Shalimar Garden Ext.-II

Ghaziabad-201005 (UP) India

Price : ₹ 110.00

गोपे को

एक

एक ख़ाली, गर्म दोपहरी में बड़े से लोहे के दरवाज़े के बाहर खड़ी तोप दिखाते हुए कामिल ने मुझसे कहा था, ''यही है धर्मस्थल। ग़लत मत समझ लेना। यहाँ पूजा पाठ नहीं होता। यहाँ मनुष्य को न्याय मिलता है। सबसे बड़े धर्म यानी राजधर्म का पालन होता है, इसीलिए हम इसे धर्मस्थल कहते हैं।''

''हम कौन?''

''मैं और मेरे बाबू। चलो तुम्हें तोप की नली पर चढ़ाते हैं। तुम चाहो तो उसके अन्दर भी उतर सकते हो। इतनी बड़ी है।''

मेरा हाथ पकड़कर कामिल ने मुझे धूप में जलती चौड़ी सड़क पार करायी थी। मैं देर तक विस्मित और मंत्रमुग्ध सा काली दैत्याकार तोप को देखता रहा था।

''इसके पहिए देखो! पहचानते हो इन्हें?'' कामिल ने पूछा।

''नहीं।''

''महाभारत के कैलेण्डर देखना कभी। कृष्ण जो रथ का पहिया उठाए हुए हैं ऐसा ही तो है। बस उसमें तीलियाँ ज़्यादा होती हैं।''

तोप को छोड़कर मैं कामिल को देखने लगा था। कैसे जानता है यह इतना सब? यह सन 1968 था।

मेरे पिता शहर में लेबर कमिश्नर के पद पर आए थे। कचहरी से थोड़ी ही दूर पर अंग्रेज़ों के बने हुए पुराने दो बंगलों में से एक हमें मिला था। शहर के राजकीय विद्यालय के आठवें क्लास में मेरा दाखिला हो गया था। मैंने पहली बार कामिल को उड़ती नज़र से क्लास में सबसे पीछे की कुर्सी पर बैठे देखा था।

चारों दिशाओं में पसरी कचहरी की एक दिशा के सामने बहुत बड़ी और ऊँची इमारत थी। उसकी ऊपर की तीन मंज़िलों में लोग रहते थे। नीचे दुकानें थीं। मैं घर का छोटा-मोटा सामान लेने वहाँ आता रहता था। वहीं पर अपनी डबल रोटी की तरह फूली, लाल गालों वाली बूढ़ी हमेशा फूलों वाला फ्राक पहनती थी और

गोल्डन बेकरी चलाती थी। वहाँ डबल रोटी लेते हुए, मैंने पहली बार स्कूल से बाहर कामिल को देखा था। सड़क पर लगे एक नल के नीचे बाल्टी रखकर पत्थर की लाल बेंच पर बैठा था। डबल रोटी लेकर मैं उसके पास गया। मुझे देखकर वह मुस्कुराया।

''तुम यहाँ रहते हो?'' मैंने पूछा।

''हाँ!'' कामिल हँसा। उसने अन्दर एक ओर इशारा किया, ''उधर।''

पुरानी दीवार में बने लोहे के जंगले वाले खुले दरवाज़े के बीच एक छोटा सा रास्ता गया था। ऊपर से गिरती हुई शाम की आख़िरी धुँधलायी रोशनी में, एक छोटी, चौकोर खुली जगह के बाद ऊपर जाती हुई सीढ़ियाँ दिख रहीं थीं। उस खुली जगह में एक टूटी साइकिल, रस्सी का गोला, दो गमले, झूले की पटरी और कोयले का ढेर पड़ा था। फर्श के एक हिस्से में पानी था। दीवार पर कुछ तारों के सहारे उखड़ा हुआ बिजली का बोर्ड झूल रहा था।

''ऊपर तीसरी मंज़िल पर मेरा घर है।''

''यहाँ क्या कर रहे हो?''

''पानी आने का इन्तज़ार कर रहा हूँ। हमारे नल की लाइन कहीं टूट गई है। कुछ बाल्टी पानी भरकर ऊपर ले जाऊँगा।'' कामिल पत्थर की बेंच से उठ गया।

''तुम कहाँ रहते हो?''

''राशन की दुकान के बाद जो दो बंगले बने हैं... उधर।'' नल में पानी आ गया। कामिल नल पर चला गया। झुककर उसने बाल्टी धार के नीचे रख दी।

''तुम्हारे नाम का मतलब क्या है?'' मैं पीछे-पीछे आया।

''सम्पूर्ण!...मेरे जन्म के बाद मेरे पिता ने कहा, मैं तुम्हारे रूप में सम्पूर्ण हो गया हूँ। उनके एक मुसलमान दोस्त बैठे थे। उन्होंने बोल दिया, कामिल। वही नाम हो गया। सबको बताना पड़ता है मतलब!'' वह हँसा। मैं चला आया।

फिर हम क्लास में एक-दूसरे को पहचान कर हँसने लगे। हमारे घर पास थे इसलिए कई बार हम साथ-साथ लौटने भी लगे।

गर्मियों की छुट्टियाँ हो गईं थीं। मैं कामिल से कई बार उसी इमारत के नीचे इधर-उधर मिलता रहा। उस दिन दोपहर को मिल गया था। मैं बर्फ़ लेने आया था। मुझे देखकर कामिल मुस्कुराया।

''मैं पतंगे लूटने जा रहा हूँ। चलोगे?''

''कहाँ?''

''उधर!'' कामिल ने कचहरी की ओर इशारा किया, ''वहाँ बहुत पंतगें गिरती हैं।''

''कोई मना करेगा तो?''

''नहीं...आजकल कचहरी बन्द है। गर्मी की छुट्टियाँ हैं। तुमने कभी देखी नहीं?''

''नहीं!'' मैंने सर हिलाया।

''मैं तो हमेशा वहीं घूमता हूँ। मेरा दूसरा घर समझ लो। चलो, तुम्हें दिखाता हूँ।''

''मैं बर्फ़ दे आऊँ?''

''ठीक है...मैं यहीं रुकता हूँ।''

बर्फ़ देकर मैं लौटा तब कामिल ने सड़क के पार पुरानी इमारत दिखाते हुए कहा था, ''यही है धर्मस्थल यानी कचहरी।''

तोप को मैंने छुआ। लोहा बहुत गर्म था। मैंने हाथ हटा लिया। ''इसीलिये अभी तोप की नली ख़ाली है। बन्दर नहीं हैं। जैसे ही शाम होगी वे सब यहाँ कूदने लगते हैं। तब तुम नली में नहीं उतर पाओगे''

''फिर?'' मैंने पूछा।

''चलो... मैं भगा दूँगा उन्हें।'' कामिल ने मेरा हाथ पकड़ लिया, ''पहले कहाँ देखोगे? अन्दर या बाहर बाहर?''

कामिल इस तरह बोल रहा था जैसे कचहरी उसका साम्राज्य हो और कोई अपने साम्राज्य और उस पर अपने प्रभुत्व को दिखाता हो! मेरा असमंजस देखकर कामिल ने ख़ुद ही तय किया, ''पहले बाहर से एक चक्कर लगा लेते हैं, फिर अन्दर आराम से घूमेंगे। वहाँ जामुन भी तोड़ने पड़ेंगे न?''

कचहरी विशालकाय थी। चारों ओर पुरानी, पीले रंग की छोटी चहारदीवारी से घिरी थी। दीवार पर कोई हाथ रखे तो कूदकर अन्दर चला जाए। उस दीवार के चारों ओर सड़कें थीं। कचहरी के चार बड़े दरवाज़े थे। एक उस सड़क पर था जो गंगा को जाती थी। दूसरे दरवाज़े के सामने जेल और पुलिस लाइन थी। तीसरी ओर क़ब्रिस्तान था। चौथी ओर वह इमारत थी जिसमें कामिल रहता था। हम गंगा जाने वाली सड़क पर थे।

गर्म दोपहरी में कुछ भिखारी पेड़ों के नीचे दुबके पड़े थे। उनके साथ कुछ कुत्ते जीभ निकाले हाँफ रहे थे। पत्थर के बने रैन बसेरे में कुछ जोगी, कुछ कीर्तनिए, ईंटों का चूल्हा बनाकर उस पर खाना पका रहे थे। एक मक्कू वाला बर्फ़ और बोतलों में रंगीन शर्बत लिए बैठा ऊँघ रहा था।

''सुबह इस सड़क पर भीड़ रहती है। गंगा नहाने वाले आते हैं। पर जिस दिन कोई मेला होता है उस दिन इस सड़क पर पैर भी नहीं रख सकते। घोड़ों पर

पुलिसवाले थोड़ी-थोड़ी देर में किनारों की तरफ़ भीड़ भगाते रहते हैं। हटो हटो... टप टप। क्या वर्दी होती है... क्या घोड़े! चिकनी, चमकदार खाल वाले। तुमने गंगा मेला देखा है कभी?'' कामिल ने जेब से कुछ चने निकाले। थोड़े मुझे दिए।

''नहीं!''

''इस बार पड़ेगा तो तुम्हें ले चलूँगा। मन्दिरों का शृंगार भी दिखाऊँगा।''

सड़क गंगा की तरफ़ जा रही थी। उसके एक ओर कचहरी की दीवार थी। दूसरी ओर स्कूल और घर बने थे। दीवार के अन्दर इमारतें अलग-अलग हिस्सों में बनी थीं, पर सबकी छतें लगभग एक जैसी थीं। ढलुवाँ, खपरैलों से ढकी।

आगे चौराहे से वह सड़क गंगा में चली गई थी। दूसरी कचहरी के सामने आ गई थी। इस सड़क पर घूमते ही सामने बड़ी और ऊँची जेल दिखाई दी। वह कचहरी के दूसरे दरवाज़े के सामने थी। उसकी चहारदीवारी सपाट पत्थरों वाली और बहुत ऊँची थी। सड़क से उसकी दीवार के पार ऊपरी मंज़िल दिख रही थी। उसमें एक गलियारे पर लोहे की सलाखें लगी थीं। गलियारे में कुछ आदमी सलाखों से चिपके खड़े थे।

''तुमने जेल देखी है कभी?'' कामिल ने पूछा।

''नहीं।''

''ठीक है... मैं कभी घूमने गया तो तुम्हें ले चलूँगा। पहले एक बार गया था। क्या खूंखार क़ैदी थे। बड़े-बड़े लोहे के जंगलों के दरवाज़ों वाले कमरे... हंटर लिए पुलिस...सड़ सड़ फटकारती। सबको जेल से पहले इस धर्मस्थल में आना पड़ता है। यहीं न्याय होता है। दण्ड दिया जाता है। कोई बच नहीं सकता। मैंने बहुत बार देखा है। हथकड़ी बेड़ियों में जकड़े क़त्ल करने वालों को। एक बड़ी मूँछ वाला तो हँसते हुए पुलिस वालों के साथ आता था। वह जब आता तो उसे देखने भीड़ लग जाती। एक बार मुझे वह घूरने लगा फिर ज़ोर से बोला, 'हप्प'। मैं तो डर कर भाग आया। तुमने क़त्ल करने वाले किसी को देखा है कभी?''

''नहीं।''

''अब कोई आया धर्मस्थल में तो दिखाऊँगा।''

मैंने सर हिला दिया। मैं सामने जेल की ऊँची, खुरदुरी दीवार देख रहा था। वह अपने सपाट पथरीलेपन में डरावनी थी।

धूप में सड़क तप रही थी। पाँव जले जा रहे थे। पसीने से बदन भीग गया था। कामिल ने मेरी हालत देखी।

''बस आगे घूमने पर क़ब्रिस्तान आ जाएगा। वहाँ पेड़ हैं। वहाँ रुकेंगे।''

कामिल ने चाल तेज़ कर दी, ''आज गर्म ज़्यादा है। अभी पानी छिड़कने वाली

गाड़ी आएगी तो सड़कें ठण्डी हो जाएँगी।''

मोड़ पर घूमने के बाद तीसरे दरवाज़े के सामने क़ब्रिस्तान दिखने लगा।

''कभी क़ब्रें देखी हैं?'' कामिल ने पूछा।

''नहीं।''

''चलो... अन्दर बैठते हैं। वहाँ छाँह भी मिलेगी। दरवाज़े के बाहर एक प्याऊ है। वहाँ पानी भी पी लेंगे। तुम क़ब्रें भी देख लेना। छू भी सकते हो। कुछ नहीं होगा। मैं तो अक्सर आता हूँ। मैंने सब देखी हैं। मुझे तो याद भी है कि किसकी क़ब्र कहाँ है। अब यहाँ कोई नहीं आता। ये अंग्रेज़ों की हैं। उनके रिश्तेदार सब चले गए। बस एक बूढ़ा और बुढ़िया ज़रूर कभी क़ब्र पर आते हैं।''

एक टूटे और दीवार की रॉड से उखड़ कर लटके हुए लोहे के पल्लों वाले दरवाज़े के सामने कामिल रुक गया। क़ब्रिस्तान की चहारदीवारी टूटी थी। अन्दर बकरियाँ थीं। रस्सी पर कपड़े सूख रहे थे। पेड़ों के टूटे, सूखे पत्ते पड़े थे। अलग-अलग तरीक़ों से क़ब्रों पर पत्थरों के ढाँचे बने थे। कुछ टूट गए थे, कुछ बचे हुए थे।

धर्मस्थल का तीसरा दरवाज़ा क़ब्रिस्तान के सामने था। उसके दरवाज़े के पास ही एक प्याऊ बना था। फूस से बनी झोपड़ी के अन्दर घड़ों में पानी भरा था। टीन की पतली चादर मोड़ कर नाली बना ली गई थी। उसी फूस में उसे फँसाया हुआ था। जब कोई पानी पीने आता तो अन्दर बैठा आदमी लोटे से नाली में पानी डालता। इधर आदमी हथेली का चुल्लू बना कर पानी पीता रहता।

कचहरी बन्द थी। प्याऊ पर भीड़ नहीं थी।

''पहले तुम पिओ।'' कामिल ने मुझे आगे कर दिया।

मैंने नाली के सामने अपनी हथेलियाँ कर दीं। मेरी हथेलियों पर ठण्डा पानी गिरने लगा। मैंने ख़ूब सारा पानी पिया। मुँह पर छींटे मारे। चप्पलें उतार कर पंजे भी गीले कर लिए। कामिल ने भी पानी पी लिया।

''अन्दर बैठेंगे। एक क़ब्र के ऊपर बहुत घना पेड़ है। वहाँ ख़ूब छाँह रहती है। तोते भी रात में वहीं सोते हैं।''

''नहीं!'' मैंने कामिल का हाथ पकड़ लिया। कामिल ने मुझे असमंजस से देखा फिर धीरे-से बोला, ''भूत दिन में नहीं होते।''

''नहीं।''

''ठीक है।''

हम फिर सड़क पर आ गए। कचहरी की दीवार के साथ हम कुछ दूर तक एक छोटी चढ़ाई पर चले। कचहरी के अन्दर की इमारतों में कुछ बदलाव दिखा।

ये नई बनी इमारतें थीं। वकीलों के कुछ पक्के कमरे दिखे। एक 'पार्क' आया फिर घूमने के बाद बड़े नाले के साथ चलते हुए हम वापस तोप के पास आ गए।

मैं पसीने में भीग चुका था। खाल गर्म हो गई थी। तोप की नली के नीचे छाया थी।

''आओ।'' कामिल मेरा हाथ पकड़ कर नली के नीचे ले गया।

''इस छाया का मतलब है चौकीदार अभी राउण्ड पर होगा। जामुन नहीं तोड़ पाएँगे।''

घास पर छाया के एक हिस्से में वह लेट गया। दूसरे हिस्से की तरफ़ ज़मीन थपथपा कर हँसा।

''नेपोलियन ऐसे ही तोप की नली के नीचे सो जाता था।''

नली के नीचे घुसते समय तक मैं कामिल से पूरी तरह अभिभूत हो चुका था। उसने मेला, जेल, क़त्ल करने वाले क़ैदी और क़ब्रें देखी हैं। नेपोलियन के बारे में भी जानता है।

नली के नीचे से जब छाया चली गई तब कामिल उठ गया।

''चलो...चौकीदार चला गया होगा।''

बड़ा दरवाज़ा बन्द था। साथ का छोटा दरवाज़ा खुला था। हम उसी से अन्दर चले गए।

''पूरी कचहरी एक गोले में बनी है...जैसे हमारी पृथ्वी। पूरी अगर एक दिन में घूमो तो समझो पैर टूटने लगेंगे। तुमको एक तरफ़ से दिखाता हूँ।''

दोपहर अब शाम में उतरने जा रही थी। दूर तक घने पेड़ थे। जामुन, इमली, मोमसिरी, कटहल। उनके नीचे कच्ची पक्की सड़क थी। कहीं-कहीं लकड़ी के छोटे तख्त पड़े थे जिन पर लोहे की जंजीर से टीन के बक्से बँधे हुए थे। पूरी कचहरी में एक भी इन्सान नहीं था। आगे जाती हुई सड़कें इधर-उधर जाकर गुम हो गईं थीं। चारों ओर सूखे पत्ते बिखरे थे। पीले... भुरभुरे। मस्जिद के बाहरी बरामदे में मुँह पर गीला अगौंछा डाले मौलवी सो रहा था। कुँए की जगत पर, सीढ़ी पर बिखरे पानी में चीख़ती हुई कुछ चिड़ियाँ चोंच डुबो रहीं थीं। निर्जन एकान्त था। इमारतों की धूप-छाँह और पके फलों की गंध के बीच कहीं-कहीं आसमान का नीलापन था।

कामिल मुझे घुमाता रहा। बम पुलिस... यहाँ सब पाखाना करते हैं। सुबह लाइन लगती है। आसपास के भिखारी, होटलों के लड़के, खोमचे वाले, क़ैदियों

से जल्दी सुबह मिलने आए लोग... सब आते हैं। सिर्फ़ 10 पैसे में। ये तीन कमरे क़ैदियों के लिए। जब उन्हें हथकड़ी में बाँध कर पेशी पर लाते हैं तो सबको पहले यहाँ जमा करते है। यहीं घर वाले छुपकर मिल लेते हैं... देखते हैं। उन्हें खाने का सामान, कपड़ा देते हैं। आगे ख़ज़ाना। सरकार का सारा पैसा पहले यहाँ आता है फिर यहाँ से सब जगह बँटता है। फिर स्टाम्प बेचने का दफ्तर, फिर लाइसेंस दफ्तर, फिर इलेक्शन ऑफ़िस, फिर पुराना, शानदार बार एसोसिएशन, फिर डी.एम.का दफ्तर, फिर मस्जिद, फिर हनुमान मन्दिर, नीलाम घर। लायर्स एसोसिएशन के कमरे। फिर ज़मीनों की रजिस्ट्री का दफ्तर... तहसील... फिर नजूल, रिकार्ड ऑफ़िस, आबकारी, मनोरंजन विभाग, सीलिंग, असलाह विभाग... इंग्लिश दफ्तर, नज़ारत... संग्रह ऑफ़िस...। इन सबके बीच अदालतें, जजों के चेम्बर, वकीलों के कच्चे-पक्के बस्ते। मेज़ कुर्सी पर बैठने वाले टाइपिस्ट, मुंशी, साइकिल स्टैण्ड, गारदघर, पानी के तीन कुँए...।

मैं थक गया था। हैण्ड पम्प से पानी पीकर हम एक तख्त पर बैठ गए। पैर हिलाते हुए कामिल बोल रहा था।

"...राजा का सबसे बड़ा धर्म है न्याय करना... इसीलिए यह धर्मस्थल कहलाता है। यहाँ दण्ड देने वाले, न्याय करने वाले धर्माधिकारी होते हैं। मैं जब कभी यहाँ देखता हूँ कि लाल बत्ती वाली गाड़ी से चमकदार पट्टी वाली वर्दी पहने, सुर्ख रंग की टोपी लगाए अर्दली उतरकर दरवाज़ा खोलता है और बड़े-बडे जज गाड़ी से उतर कर अन्दर जाते हैं तो मनुष्य होने के गर्व से सर ऊँचा हो जाता है। हम इसीलिए दूसरे प्राणियों से आगे निकल पाए, सबसे बड़े बन पाए क्योंकि हमने न्याय किया। ग़लत काम करने वालों को दण्ड दिया और यही वह जगह है जहाँ न्याय होता है। कल आओ तो तुम्हें अन्दर से अदालत दिखाएँ। सैकड़ों साल पुरानी असंख्य किताबों में न जाने क्या-क्या लिखा है। सैकड़ों मुक़दमों के फ़ैसले। सबको पढ़ा जाता है। उसी में से पढ़कर हमेशा कुछ लिखते रहते हैं, बोलते हैं, बहस करते हैं। इसीलिए कि कोई दोषी बच न जाए... किसी निर्दोष को दण्ड न दे दिया जाए। ताक़तवर मनुष्य इसीलिए छोटे कमज़ोर मनुष्य को मछली की तरह निगल नहीं सकता, सिर्फ़ ताक़तवर ही जीत नहीं सकता क्योंकि मनुष्य का समाज न्याय पर टिका होता है और वह यहाँ सबको मिलता है।"

मैं हैरानी से कामिल को देख रहा था।

"...तुम इतने छोटे हो, पर यह सब कैसे जानते हो ? कैसे बोल पाते हो इतना ?"

"मेरे बाबू मुझे बताते हैं।"

"क्या करते हैं ?"

"कुछ भी... कभी नारियल पर जटाधारी शंकर बनाते हैं... कभी कोई मूर्ति, कभी मंजन तो कभी कोई चूरन। लड़कियों के स्कूलों में नृत्य सिखाने चले जाते हैं, कभी नाटक करवा देते हैं। अभी उन्होंने एक नए तरह का मृदंग बनाया है। रात में काम करते हैं... दिन में सोते हैं। कई बार जब मुझे नींद नहीं आती तो उनके पास बैठकर उन्हें मूर्ति बनाते देखता हूँ। मैं उन्हें बीच में चाय बनाकर देता रहता हूँ। उनके हाथ मिट्टी से सने हों तो तम्बाकू भी बना देता हूँ। तब वह मुझसे बातें भी करते जाते हैं। वरना मैं कैसे जान सकता हूँ इतनी बड़ी बातें... इतने भारी भरकम शब्द!..." कामिल तख्त से उतर गया।

"मैं जामुन के पेड़ पर चढ़ता हूँ। तुम यहीं बैठो।"

"चौकीदार तो नहीं आएगा?"

"नहीं... पर तुम्हें दिखे तो भाग जाना। उसके पैर में फोड़ा है आजकल। वह दौड़ नहीं पाएगा।"

"और तुम?"

"उसे क्या पता मैं यहाँ हूँ। बस तुम इधर मत देखना।"

मैंने सर हिला दिया। कामिल थोड़ी दूर जाकर पेड़ों के बीच एक पेड़ पर चढ़ गया। मैं चुपचाप दूसरी तरफ़ देखने लगा।

शाम होना शुरू हो गई थी। कचहरी की ढलवाँ छतों, टूटी दीवारों और पेड़ों की शाखों पर छाया उतरने लगी थी। दूसरा दरवाज़ा मेरे सामने था जिसके बाहर जेल थी। जेल की ऊपरी मंज़िल की सलाखों पर खड़े कुछ लोग ख़ाली आँखों से डूबते सूरज को देख रहे थे। दीवार के पास बिजली के ट्रान्सफर्मर के नीचे कोढ़ी दिन भर मिली हुई रेजगारी गिन रहे थे। घाट के मन्दिरों में आरती की तैयारी में घंटों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं थीं।

"चलो!" कामिल पेड़ से उतर आया। उसकी साँस फूली थी। वह तेज़ चल रहा था। उसके साथ लगभग दौड़ता हुआ मैं। हम उसी दूसरे दरवाज़े से बाहर आ गए। फिर सड़क से घूम कर क़ब्रिस्तान पार करके इमारत की ओर चलने लगे। कामिल ने दोनों जेबों में ठुँसे जामुनों के गुच्छे निकाले।

"लो।" उसने दो मुट्ठी गुच्छे मेरी ओर बढ़ा दिए। जामुन बहुत छोटे थे। मैंने जामुन जेब में रख लिए।

मेरे पाँवों में अब तेज़ दर्द होने लगा था। अंगूठे की खाल कड़ी हो गई थी। पता नहीं कितने घंटे, कितनी दूर हम चले थे। मैं लंगड़ाने लगा। हम तोप के पास आकर रुक गए। यहाँ से हमारे रास्ते अलग होते थे। मैंने पैरों को एक झटका दिया।

"तुम्हारे घर में तो नौकर होंगे। गर्म पानी में नमक डालकर पैरों को कुछ

देर डुबाए रखना। ठीक हो जाओगे।'' कामिल ने झुकर मेरा अँगूठा देखा फिर सीधा हो गया।

''और तुम?'' मैंने पूछा।

''मुझे आज फिर चार बाल्टी पानी ऊपर चढ़ाना है। उसके बाद बाबू की बनाई कुछ मूर्तियों को बेचने के लिए जाना है। पुराना हिसाब भी करना है।'' कामिल मुस्कुराया। मैंने सर हिला दिया। हम अपने-अपने रास्ते पर चल दिए। कुछ ही क़दम जाने के बाद मैंने पीछे से कामिल की आवाज़ सुनी, ''जामुन रास्ते में खा लेना। घर ले गए तो डाँट पड़ेगी।''

हमारी दोस्ती गहरी होती गई।

धर्मस्थल के तोप वाले मुख्य द्वार के सामने, सड़क के पार सिर्फ़ एक दुकान थी। साइकिल ट्यूब का पंचर बनाने वाले की। पार्क की लोहे की रेलिंग के बाहर निकली पीले कनेर की शाखाओं के नीचे उसने पानी का छोटा सा टब रख लिया था। लकड़ी की पेटी में कुछ औज़ार थे। लोहे की रेलिंग के साथ एक लकड़ी बाँध कर उस पर कुछ पुराने टायर और ट्यूब लटका लिए थे। पंचर बनाने वाले का एक बेटा था। मेरी ही उमर का। राशन की दुकान की छत से वह पतंग उड़ाता था। मैं अपने घर की छत से। पता नहीं कब उसने मेरी आँखों का रंग देख लिया और मुझे भूरी कहने लगा। छत से ही वह चिल्लाता।

''लम्बे बढ़ाओ भूरी... कोतवाली तक। वहाँ लड़ाएँगे।''

कभी वह मुझे काट देता तो 'भूरी को काटा' कह कर देर तक उछलता।

कभी कहीं सड़क पर देख लेता तो धीरे से मुस्कुरा कर कहता, 'भूरी'। मुझे उसका भूरी कहना अच्छा नहीं लगता था।

एक दोपहर जब मैं और कामिल धर्मस्थल के अन्दर घूमने जा रहे थे, मैंने उसे दुकान पर बैठे देख लिया। वह अकेला था। मैंने कामिल को रोका, ''यह मुझे भूरी कहकर चिढ़ाता है।''

कामिल ने उस लड़के को देखा फिर मुझे देखकर हँसा, ''ठीक तो कहता है। तुम्हारी आँखों पर बहुत सी लड़कियाँ मरेंगी''

''नहीं... मुझे अच्छा नहीं लगता।''

''आओ।'' कामिल ने मेरा हाथ पकड़ा और सड़क पार करके उसकी दुकान पर आ गया।

वह सर झुकाए टब का पुराना पानी बाहर फेंक रहा था। हमें देख कर वह मुस्कुराया।

''आज मैंने दो भर्रा पाटियाले लूटे हैं भूरी... शाम को लड़ाएँगे।'' उसने मुझसे कहा।

कामिल ने मेरा हाथ छोड़ कर उसका हाथ पकड़ लिया।

''खड़े हो।''

वह अचकचा कर उठ गया।

''क्या नाम है?''

''मून।''

'बड़ा अंग्रेज़ी नाम है।''

''तो... तुमसे मतलब?'' वह भी सीधा खड़ा था।

''तुम इसे भूरी क्यों कहते हो?''

''इसकी आँखें ऐसी हैं।''

''नहीं... अब नहीं कहोगे!''

''कहूँगा।'' उसने कामिल की खोपड़ी से अपना सर भिड़ा दिया। कामिल ने उसे एक धक्का दिया और उससे लिपटता हुआ फर्श पर लेट गया। वह भी कामिल से गुत्थमगुत्था हो गया। मैं कुछ क्षण देखता रहा फिर मैंने पीछे से उसके बाल पकड़ कर खींचना शुरू किया। वह पलट कर लेट गया।

''एक से दो-दो लड़ते हो सालों... दम हो तो अकेले आओ।'' वह कामिल के नीचे से चीख़ा।

''बोल...कहेगा?'' कामिल ने उसकी गर्दन दबायी।

''हाँ कहूँगा...भूरी...भूरी...भूरी...''

कामिल ने उसके मुँह पर एक मुक्का जड़ दिया। उसका होंठ किनारे से फट गया। ख़ून निकलने लगा। मैं घबरा गया। मैंने उसके बाल छोड़ दिए। कामिल भी उससे अलग हो गया। वह सड़क से उठ गया। उसने अपने कटे होंठ पर उँगली फेरी। उस पर ख़ून की कुछ बूँदें आ गईं। उसने टब को भरने के लिए रखी बाल्टी के पानी से चुल्लू भरा और मुँह धोकर सीधा हो गया।

वह अब मुझे देख रहा था। मुझे लगा वह झपटेगा। मैं कामिल के पीछे हो गया।

''नहीं कहूँगा...पर तेरी आँखें हैं सुन्दर।'' वह हँसा।

''चलो।'' कामिल ने मुझे खींच लिया, ''अब कहे तो बताना। इसके चाकू भोंक दूँगा।''

हम सड़क पार करके मुख्य द्वार पर आ गए। धर्मस्थल के अन्दर जाने से पहले मुझे लगा किसी ने मुझे भूरी कहकर आवाज़ दी। मैंने घूम कर देखा। वह अपने ख़ाली टब में चुपचाप बाल्टी से पानी डाल रहा था।

रक्षाबन्धन, स्वतंत्रता दिवस व रविवार मिलाकर तीन दिन की छुट्टियों में स्कूल बन्द हो गए। मैं घर वालों के साथ रिश्ते के एक मुंडन संस्कार में बाहर चला गया। लौटकर स्कूल गया तो कामिल नहीं मिला। वहाँ पता लगा कि उसकी माँ लोहे के जाल पर खड़े हो कर कपड़े सुखा रही थी कि पूरा जाल नीचे चला गया। जाल के साथ हवा में तैरती हुई वह भी। उसकी मृत्यु हो गई। यह छुट्टी के पहले दिन ही हो गया था।

शाम को मैं कामिल से मिलने गया। उसके घर मैं पहले कभी नहीं गया था। मैं उसके साथ कभी आता भी, तो वह लाल बेंच के पास रुककर मुझे विदा कर देता। मैं बेंच के पास पहुँच कर रुक गया।

सड़क से अन्दर की वही चौकोर खुली जगह दिख रही थी जिधर कामिल ने इशारा करके बताया था। उसके पहले एक बहुत छोटा, अंधेरे में डूबा गलियारा था। एक खुली जगह से सीढ़ी कामिल के घर जा रही थी। मैं गलियारा पार करके उस चौकोर जगह में आया। मैंने सर उठाकर देखा। ऊपर, छज्जों के पार आसमान का छोटा मटमैला टुकड़ा दिख रहा था। दीवारों पर गहरी सीलन थी। एक औरत ज़मीन पर उकड़ूँ बैठी सिलबट्टे पर कुछ पत्तियाँ पीस रही थी। अभी अन्धेरा शुरू नहीं हुआ था। अभी दिन पूरी तरह ख़त्म नहीं हुआ था। एक धुँधलका उस चौकोर जगह में था जिसके अन्दर नमी, मसालों की गंध और किसी के कराहने की आवाज़ थी।

सामने सीढ़ी थी जो घूमती हुई ऊपर जा रही थी। सीढ़ी पर अन्धेरा था। उसके साथ की दीवारों में कुछ जालियाँ बनी थीं जिनसे रोशनी और हवा आ सके। उन जालियों में पुराने दिए, अख़बार, टूटे बल्ब, कपड़ों के टुकड़े ठुँसे थे। दीवार का सहारा लेकर धीरे-धीरे टटोलते हुए मैं सीढ़ियाँ चढ़ता गया।

तीसरी मंज़िल पर पहुँचकर एकदम से रोशनी दिखी। दाएँ हाथ पर दीवार ख़त्म हो गई थी। एक लकड़ी का दरवाज़ा था जो खुला था। एक पाखाना घर बना था। बाएँ हाथ पर एक बड़ा दरवाज़ा था। उस दरवाज़े से शाम की आख़िरी रोशनी आ रही थी। मैं उस दरवाज़े पर आ गया।

दरवाज़े के पार एक खुली जगह थी। उसमें एक ओर चौकोर मुँडेर बनी थी। उसके अन्दर सब ख़ाली था। ऊपर से झाँकने पर तीन मंज़िल नीचे किसी के घर का आँगन दिखता था। मैं थोड़ा और आगे आया। एक कोने में कपड़ों के ढेर थे। पानी की भरी बाल्टी थी। कुछ गमले थे जिनमें छोटे पौधे लगे थे। उनसे सटे कुछ दरवाज़े थे जिसके अन्दर कोठरी ऐसे कमरे थे।

एक कमरे में मुझे कामिल दिखा। दीवार से पीठ टिकाए, फर्श पर बैठा वह

कमरे के एक ओर देख रहा था। उसके साथ दो लोग और बैठे थे। मै थोड़ा और आगे आया। कमरे की चौखट पर कुछ अन्धेरा बढ़ा। कामिल ने सर घुमा कर देखा। मैं चुपचाप उसे देखता रहा। उसने कुछ क्षण ख़ाली आँखों से मुझे देखा। फिर अन्दर आकर अपने पास बैठने का इशारा किया। मैं अन्दर जाकर चुपचाप उसके पास फर्श पर बैठ गया। उसी की तरह दीवार से पीठ टिकाकर।

कामिल जिस तरफ़ देख रहा था मैंने उस तरफ़ देखा। उसके पिता उस ओर एक कोने में छोटी चटाई पर बैठे थे। उनके पास की चौकी पर एक महिला की तस्वीर थी। तस्वीर के आगे फूल पड़े थे। दोनों ओर दो धूपबत्तियाँ जल रहीं थीं।

मैंने फिर उसके पिता को देखा। मैं उन्हें पहली बार देख रहा था। कन्धों तक उनके लम्बे बाल बिखरे थे। बीच में माँग बनी थी। रंग साफ़, चेहरा भारी और गोल था। मैंने कमरे में निगाह दौड़ायी। बहुत छोटा कमरा था। एक दूसरे कोने में मृदंग रखा था। दीवार के बने ख़ानों में कुछ ब्रश, रंग, छेनी, लोहे की पतली फाइलें और प्लास्टर आफ पेरिस था। नीचे के ख़ाने में कुछ अधबनी आकृतियाँ थीं। कमरे के एक छोर से दूसरे छोर तक एक रस्सी बँधी थी। उस पर कपड़े लटक रहे थे। फर्श पर एक टेबिल फैन रखा था जो बन्द था। दो दीवारों पर सीपियों से बनी दो तस्वीरें थीं। एक कोने में लकड़ी की पतली सी अलमारी थी। उसमें कुछ किताबें थीं। नीचे चप्पलें थीं। कपड़े का एक झोला था। छोटा सा मूसल और इमामदस्ता था।

"कब आए?" कामिल ने धीरे से पूछा।

"आज" मैं भी फुसफुसा कर बोला।

कामिल फिर चुप हो गया। मैं भी चुप बैठा रहा।

कमरे में अब अन्धेरा हो गया। कामिल उठा। उसने कोने के बोर्ड का स्विच दबाया। मृंदग के ऊपर छोटा सा बल्ब जल गया। उसके पिता ने बुदबुदाते हुए प्रकाश की स्तुति में हाथ जोड़कर कोई प्रार्थना की।

कामिल ने मुझे उठने का इशारा किया। मैं उठ गया। "मैं इसे छोड़ कर आता हूँ।" कामिल ने पिता से कहा। उन्होंने धीरे से सर हिला दिया।

हम कमरे के बाहर की खुली जगह पर आ गए। साथ के कमरे में कुछ औरतें, बच्चे थे। वे सब धीरे-धीरे बोल रहे थे। यहाँ एक बल्ब पहले से जल रहा था। मैंने मुँडेर से नीचे झाँका। कामिल तब तक बाहर के दरवाज़े पर पहुँच गया था। वहाँ वह चुपचाप खड़ा रहा। कुछ क्षण मैं नीचे देखता रहा। जाल पर तैरती उसकी माँ नीचे किस तरह गिरी होगी? मैं भी दरवाज़े पर आ गया।

"तुम्हें नीचे छोड़ दूँ। सीढ़ियों पर अन्धेरा होगा।" कामिल बोला।

"कोई बल्ब नहीं जलाता?"

''सब चोरी हो जाते हैं।''

कामिल ने मेरा हाथ पकड़ लिया। ''दूसरा हाथ दीवार पर रखते हुए सहारे से आ जाओ।''

मैं कामिल के पीछे उतरने लगा।

दीवार में बनी जालियों में जो जाली खुली थी उससे कहीं-कहीं रोशनी के कुछ रेशे अन्दर आ रहे थे। उनमें कभी सीढ़ी अचानक दिखने लगती।

कामिल मुझे उसी चौकोर जगह पर ले आया फिर बाहर सड़क पर। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया। कुछ देर चुप रहा।

''मैं परसों स्कूल आऊँगा।'' उसने सर उठा कर मेरी ओर पहली बार पूरी तरह देखा। उसकी आँखों में पानी था। मैंने सर हिलाया। मैं चलने लगा।

''उसने फिर तुम्हें भूरी तो नहीं कहा?'' कामिल ने पूछा।

''नहीं।''

कामिल ने सर झुकाया फिर वापस दीवार के अन्दर उसी चौकोर हिस्से में जाकर गुम हो गया।

कामिल स्कूल आने लगा था। धीरे-धीरे सब सामान्य होता गया। कामिल गणित में कमज़ोर था। अक्सर कुछ समझने मेरे घर आ जाता। वह कभी सीधे घर के अन्दर नहीं आता था। लोहे का फाटक खोलकर वहीं से मुझे आवाज़ देता था। लॉन और छोटी सी सड़क पार करने के बाद उसकी आवाज़ जब किसी को सुनाई पड़ती तब वह मुझे बता देता। मैं बाहर आकर उसे अन्दर ले आता।

''तुम सीधे अन्दर आया करो न।'' मैं कहता।

''नहीं...किसी के भी घर ऐसे नहीं जाते।''

वह सर झुकाए सहमा सा खड़ा रहता। मैं उसे अपने साथ बाहर के बरामदे में ले आता। वहाँ मेज़ कुर्सियाँ पड़ी रहतीं थीं। कामिल कभी उससे आगे मेरे घर नहीं गया। वहीं हम बैठ जाते। मैं कामिल को गणित पढ़ा देता।

हम धर्मस्थल के अन्दर घूमने जाते रहे। एक पेड़ के फल ख़त्म होते तो दूसरे शुरू हो जाते। बहुत बार सन्नाटे वाली सड़कें, गहरा एकान्त और वकीलों के ख़ाली तख्तों पर लेटकर उड़ते बादलों को देखने का सुख हमें वहाँ ले जाता। धर्मस्थल हमारा दूसरा घर बन गया था।

बारिश के दिनों में एक दोपहर हम कचहरी के तीसरे दरवाज़े से बाहर निकले जो क़ब्रिस्तान की तरफ़ खुलता था। उस दिन कचहरी खुली थी। भीड़ नहीं थी।

जैसे ही सड़क पर पहुँचे तेज़ बारिश शुरू हो गई। सामने कुछ क़ब्रों पर छत वाले मकबरे बने थे। हम एक मकबरे के अन्दर बैठ गए।

हमारे चारों ओर कुछ नहीं था सिवाय तेज़ हवाओं से हिलते पेड़ों की शाखों के, पत्तों के और बारिश के शोर के। बारिश की बूँदें कई बार अन्दर आ रहीं थीं। चारों ओर सिर्फ़ टूटे पत्थर, सूखे पत्ते और ऊँची घास थी। टूटी, छोटी चहारदीवारी के बाहर ख़ाली सड़क दिख रही थी।

''मैं अब शाम को नहीं मिला करूँगा।'' कामिल ने हथेली से दूसरे हाथ पर गिरा पानी पोछते हुए कहा। मैंने उसे देखा। उसने एक सूखी डंडी उठा ली और पत्थरों के बीच की मिट्टी को उससे खुरचने लगा।

''क्यों ?''

''शाम को मैं टाइप सीखने जाया करूँगा।''

''क्यों ?'' मैंने पूछा।

''बड़े भय्या ने दूसरे शहर में ट्रान्सफर करा लिया है। वे सब पन्द्रह दिन में चले जाएँगे। छोटे भय्या ने कह दिया है कि वह अकेले पूरे घर का ख़र्चा नहीं उठा सकते। मुझे या बाबू को भी आधा ख़र्च उठाना होगा। बाबू की बनाई चीज़ें कभी ज़्यादा नहीं बिकीं। कभी किसी स्कूल में कोई नाटक करने को मिल जाता है या किसी कवि सम्मेलन में संचालन या कुछ दिनों के लिए कोई लड़की पेन्टिंग सीखने आ जाती है। पर इससे ख़र्च पूरा नहीं होता। मुझे ही करना होगा। टाइपिंग सीख लूँगा तो यहाँ किसी बड़े वकील या टाइपिस्ट के साथ काम मिल जाएगा। कुछ नहीं हुआ तो अपनी मशीन ले कर किसी पेड़ के नीचे बैठ जाऊँगा।''

मैं कुछ नहीं बोला! चुपचाप सामने बारिश देखता रहा।

''देखो!'' कामिल ने जेब में हाथ डालकर एक काग़ज़ निकाला।

''मैंने टाइपिंग स्कूल में नाम भी लिखा लिया है। यह लाइन सबसे पहले करनी होती है। सैकड़ों बार। इसमें अंग्रेज़ी का हर अक्षर है।'' कामिल ने काग़ज़ मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने पढ़ा।

''द क्विक ब्राउन फॉक्स जम्प्स ओवर द लेज़ी डॉग''

मैंने काग़ज़ उसे वापस कर दिया। कामिल ने काग़ज़ मोड़कर वापस जेब में रख लिया। वह भी चुपचाप बारिश देखने लगा।

धीरे-धीरे बारिश के शोर में एक अलग तरह का शोर मिलने लगा। यह शोर गहरा होता जा रहा था। यह बारिश और हवा में लहराते पत्तों के शोर को ढक रहा था। सड़क पर कुछ लोग दिखे फिर धीरे-धीरे बहुत से लोग दिखने लगे। वे बारिश में भीगते हुए धर्मस्थल के तीसरे दरवाज़े की ओर आ रहे थे।

हम मकबरे की छत से बाहर निकल आए। टूटी चहारदीवारी के पीछे से देखा हमने। बाँयी ओर जेल के चौराहे की तरफ़ से असंख्य आदमियों का जुलूस आ रहा था। उनके हाथों में लाल झंडे, लाल कपड़ों के बैनर थे। वे सब उत्तेजना, उत्साह में चीख़ रहे थे। बारिश मे तरबतर उनके चेहरों पर फूली नसें और माथों पर सलवटें थीं। वे नारे लगा रहे थे। उनकी देहों से गीले कपड़े चिपके थे। उनकी हड्डियाँ...चेहरे की निस्तेज सूखी खाल, पाँवों की फटी एड़ियाँ दिख रहीं थीं। वे सब एक जैसे थे। कृशकाय, उभरी हड्डियों के कंकाल। उनके चेहरे एक जैसे थे। आँखें एक जैसी थीं। वे सब बारिश के धुँधलके के पीछे से धीरे-धीरे निकलते हुए चले आ रहे थे।

जुलूस में आगे आगे कुछ लोग चल रहे थे। पदचाप, नारों की थर्राहट, नगाड़ों, लाउडस्पीकर की आवाज़ों के साथ धीरे-धीरे बढ़ते हुए जुलूस धर्मस्थल के अन्दर जाने लगा। उसका दूसरा सिरा कहीं नहीं दिख रहा था।

''ये कहाँ जा रहे हैं?'' मैंने पूछा।

''डी.एम. के पास। न्याय माँगने। वही यहाँ का सबसे बड़ा धर्माधिकारी है। तुम्हें बताया था न... यह धर्मस्थल इसीलिए तो बनाया गया है कि सबको न्याय मिले।''

मैं कुछ नहीं बोला। पर मुझे कामिल की बात समझ में नहीं आई। यदि सबको यहाँ न्याय मिल जाता है तो एक साथ, इतने लोगों को, जुलूस बनाकर न्याय माँगने क्यों आना पड़ता है?

मैंने कामिल को देखा। चहारदीवारी से हटकर धीरे-धीरे टूटे दरवाज़े पर वह आ गया। मैं पीछे था।

''चलोगे?'' उसने पूछा।

''कहाँ?''

''जुलूस में।''

''नहीं।'' मैंने सर हिला दिया। कामिल दरवाज़े की लोहे की जंग लगी सलाखों से मुँह चिपकाए फैली आँखों से जुलूस देख रहा था। सीखचों से टपकती पानी की बूँदों को पीते हुए बोला, ''आजकल गंगा भी ऐसे ही उफन रही है। उसका भी दूसरा छोर नहीं दिखता।''

द क्विक ब्राउन फॉक्स... कामिल ने एक हफ्ते में सीख लिया। दो महीने में ही उसने इंग्लिश टाइपिंग में प्रति मिनट चालीस शब्द की रफ़्तार पकड़ ली।

चूड़ी बाज़ार जहाँ ख़त्म होता था उसके आगे एक पुराने गैरेज में टाइपिंग स्कूल

था। लकड़ी की चार बेंच पड़ीं थीं। उनके बीच छोटी मेज़ों पर बारह पुराने टाइपराइटर रखे थे। तीन शिफ्ट में लड़के और लड़कियाँ उस पर टाइपिंग सीखते थे। सरकारी नौकरी में टाइपिस्ट हो जाना तब सम्मान और आर्थिक सुरक्षा, दोनों की बात थी।

बहुत से लोग उस स्कूल में टाइपिंग का काम भी कराते रहते थे। छोटी कम्पनियाँ, थीसिस लिखने वाले लड़के, नौकरियों की अर्जी देने वाले बेरोज़गार, लेखक और कचहरी के कुछ बड़े टाइपिस्ट, जिनके पास इतना काम हो जाता था कि वे तय समय में पूरा करके नहीं दे पाते थे और जो उसे अकेले पूरा भी नहीं कर सकते थे। टाइप स्कूल की एक शिफ्ट ख़त्म होने के बाद कुछ लड़के पैसे लेकर यह काम करते थे। कामिल भी करने लगा।

कचहरी में बाबू आनन्द स्वरूप सबसे पुराने और अनुभवी टाइपिस्ट थे। उनके पास बहुत काम रहता था। ख़ुद ही ड्राफ्टिंग करके टाइप कर सकते थे। उनका कुछ न कुछ काम हमेशा स्कूल में आता रहता था। कामिल का घर कचहरी के पास था। कामिल उनसे काग़ज़ लाने और टाइप करके वापस देने लगा। एक दिन बाबू आनन्द स्वरूप ने उसे रोक लिया,

''तुम कैसे रोज़ समय से आ जाते हो?''

''मैं यहीं रहता हूँ।''

''कहाँ?''

''सामने।''

''क्या यह सब तुम टाइप करते हो?''

''ज़्यादातर...''

''कितनी स्पीड है?''

''पैतालिस।''

''वहाँ क्या मिलता है?''

''तीन रुपए घंटा।''

''मेरे साथ काम करो। एक पन्ने के दो रुपए दूँगा। जितने पन्ने चाहे करो। छुट्टी के दिन भी कर सकते हो। तुम्हारा काम सब वकील पसन्द करते हैं।''

टाइप स्कूल छोड़कर कामिल शाम को बाबू आनन्द स्वरूप के बस्ते में बैठने लगा। मैं अपनी कोचिंग से लौटते समय अक्सर शाम को कामिल के पास रुक जाता।

लायर्स एसोसिएशन के तीन कमरों में से एक कमरा बाबू आनन्द स्वरूप के पास था। वह पिछले चालीस सालों से कचहरी में काम कर रहे थे। पूरी कचहरी उनको जानती थी। उनकी आयु 65 वर्ष के आसपास थी। अब काम कम कर पाते

थे। एसोसिएशन की शतरंज लेकर एक कोने में बैठे रहते। जो भी ख़ाली दिखता उसे आवाज़ देकर बुला लेते। कई बार कुँए का पानी बेचने वाले लड़के को बुला कर कहते, ''देखना तो उधर...धूप में कोई वकील ख़ाली बैठा हो तो भेजना।'' पुकार के इन्तज़ार में बैठे किसी भी व्यक्ति को पकड़ लेते।

''एक बाजी हो जाए महाशय।''

सुनवाई के दौरान बीच के समय में वकील और मुवक्किल भी उनके साथ शतरंज खेलने आ जाते। तब कमरे के उस कोने में मेज़ के चारों ओर भीड़ जुट जाती। झुकी हुई खोपड़ियों के बीच की जगह से उनकी सिगरेट का धुआँ उड़ता रहता। कभी-कभी कोई बोल देता, ''घोड़ा उड़ाइए न बाबू जी... वजीर अर्दब में आ जाएगा।''

चाल ग़लत होती तो भी बाबू आनन्द स्वरूप कभी चेहरे पर झुँझलाहट नहीं लाते। खेलना छोड़ कर, सीधे होकर कुर्सी की पुश्त से टिक जाते। सिगरेट का कश लेते हुए कुछ क्षण उस आदमी को देखते रहते फिर अत्यन्त शान्त और संयत स्वर में पूछते, ''घोड़ा उड़ेगा तो क्या इनका फीला बैठा अपनी... ?''

वह आदमी अचकचा कर फिर मोहरों पर झुक जाता।

शाम को कचहरी बन्द होने के बाद भी लोग बैठे रहते...आते रहते। कामिल काम करने लगा था तो आनन्द स्वरूप ने ख़ुद काम करना और कम कर दिया था। मैं आता तो कामिल मुस्कुरा कर मुझे पास की कुर्सी पर बैठा लेता। टाइप करते हुए बात करता जाता। कभी चुप भी रहता। मैं तब चारों ओर देखता। वकील जा चुके होते। कमरे के एक कोने में सिगरेट पीते हुए बाबू आनन्द स्वरूप किसी के साथ शतरंज पर झुके होते। धीरे-धीरे अन्धेरा बढ़ने लगता। कामिल उठकर बल्ब जला देता।

''बाहर चलें?'' कामिल पूछता।

''नहीं...तुम काम करो।'' मैं उठ जाता... ''मैं तो यूँ ही आ गया था।''

कामिल ने कचहरी के दो टाइपिस्ट से शाम के लिए उनके टाइपराइटर किराए पर लेकर दो लड़के और रख लिए। बाबू आनन्द स्वरूप को कोई आपत्ति नहीं थी। उन्हें काम जल्दी और पैसे ज़्यादा मिलने लगे। कामिल लड़कों को एक रुपए पन्ना देता था। कई बार ऐसा भी हुआ है कि मैं गया तो बाबू आनन्द स्वरूप शतरंज पर अकेले थे। वह मुझे बुलाकर शतरंज सिखाने की कोशिश करते।

''जीवन भी इसी तरह है... एक साथ चौसठ ख़ानों पर नज़र रखनी पड़ती है... वरना मात हो जाती है। आओ...सिखाता हूँ तुम्हें।''

कामिल दूर से ही इशारे से मुझे मना कर देता। मैं उनके पास नहीं जाता।

बाबू आनन्द स्वरूप एक बार कामिल को देखते फिर वह भी उठ जाते।

''चलो छोड़ो...'' वह कामिल को टाइपराइटर से उठा देते, ''फिर कर लेना। दो दिन तो छुट्टी है।''

कई बार वह घर नहीं जाते। तब मुझे बाबू आनन्द स्वरूप का एक नया रूप दिखाई पड़ता। सूखी पलकों पर उँगलियाँ फेरते हुए वह धीरे-धीरे बोलते... ख़ास तौर पर कामिल से ही।

''बहुत कम उमर में तुम एक विचित्र संसार में आ गए हो। पता नहीं तुम्हारा दुर्भाग्य है या सौभाग्य। मनुष्य को यहाँ सबसे अच्छी तरह समझोगे। इन्सानों से ज़्यादा शान्त और नियमबद्ध भेड़ियों का झुण्ड होता है! इन्सान स्वभाव से युद्ध चाहता है। स्वभाव से बुरा होता है। केवल दण्ड के भय से ही वह सीधे रास्ते पर चलता है। दण्ड न हो तो दुनिया में मात्स्य-न्याय रह जाये। यानी हर बड़ी मछली अपने से छोटी मछली को निगल ले। यह विश्व दण्ड के द्वारा ही अच्छे मार्ग पर लाया जाता है। यह सब कहते हैं। हमारे धर्मशास्त्रों में भी कहा गया है। दण्डेन नीयते चेयं दण्ड नयति या पुनः। और भी है। सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः। दण्डस्य हि भयाद भीतो भोगायैव प्रवर्तते। वहाँ सब लिखा है। मुक़दमे, वकील, गवाह, सबके बारे में। धर्माधिकारी के कर्तव्य के बारे में। यह कचहरी सिर्फ़ पत्थरों की इमारत नहीं है। सिर्फ़ कानून के दाँव-पेचों का अखाड़ा नहीं है। यहाँ मनुष्य को उनके सुख दुख बाँटे जाते हैं। मनुष्य के लिए ईश्वर के बाद उसकी आस्था का केन्द्र ये धर्मस्थान, धर्माधिकारी हैं।'' तब तक कोई दरवाज़े पर दिखाई देता। बाबू आनन्द स्वरूप चौंक कर उठ जाते, जैसे नींद से जागे हों। तेज़ी से लपकते हुए उठकर उसकी बाँह पकड़कर खींचते, ''अरे आइए महाशय... कब से इन्तज़ार कर रहा हूँ आपका।'' कोने में शतरंज की बाजी सज जाती।

''मैं बन्द कर दूँगा सब। तुम लोग चाहो तो जाओ।'' वह बिना देखे कामिल से कहते। कामिल इशारा करता। हम बाहर चले जाते। लौटते समय रास्ते में मैं बाबू आनन्द स्वरूप की बातें सोचता रहता।

हमारे दसवीं कक्षा के इम्तहान ख़त्म हो गए थे। गर्मी की लम्बी छुट्टियाँ थीं। कचहरी एक महीने के लिए बन्द हो गई। ख़ाली, उबाऊ, लम्बे और गर्म दिन फिर आ गए थे।

कामिल दोपहर को मेरे घर आया। सड़क के दरवाज़े से ही उसने आवाज़ दी। थोड़ी देर बाद मैंने आवाज़ सुनी। मैं बाहर आया। वह पसीने में भीग चुका था।

''पुलिस लाइन में हाथरस की नौटंकी बुलायी गई है।'' उसने दो पास दिखाए।

''कहाँ से मिले?''

''बाबू आनन्द स्वरूप के नाम से आए थे। चलो देखते हैं। पर रात में बहुत देर होगी।''

''फिर?''

''मेरे घर रुक जाना।''

'कहूँगा क्या?''

''कह देना मेरे घर जागरण है या कठपुतली का नाच होगा।''

हम रात को तोप के पास मिले। सड़क से होते हुए जेल के पास पुलिस लाइन पहुँच गए। मुझे हैरानी हुई कि कामिल को पास दिखाना नहीं पड़ा। दरोगा उसे पहचानता था। अन्दर भी कई पुलिस वाले उसे जानते थे।

बड़े मैदान के एक हिस्से में दरियाँ बिछी थीं। आख़िरी दीवार के पीछे गंगा थी। मैं पहली बार इस तरह रात को घर में झूठ बोलकर निकला था। पहली बार नौटंकी देख रहा था। कुछ ही देर में स्टेज पर नगाड़ा बजने लगा। लोग इधर-उधर से आते हुए दरियों पर बैठ गए। दरियाँ भर गईं। रोशनियाँ कम कर दी गईं।

हरिश्चन्द्र तारामती की नौटंकी थी। हम सबसे आगे बैठे थे। कहानी शुरू हुई... खेल शुरू हुआ। तारामती के बेटे की मृत्यु का दृश्य आया। 'दिल का खिलौना हाय टूट गया' गाने पर तारामती बनी औरत ने विलाप शुरू किया। जिस तरह वह स्टेज पर पछाड़ खाकर गिर रही थी... देखने वालों के कलेजे फट रहे थे। मैंने देखा कामिल की आँखों से आँसू गिर रहे थे।

पूरा खेल जब ख़त्म हुआ तो आधी रात बीत चुकी थी। लौटते समय हम चुपचाप सड़क के एक ओर चल रहे थे। लम्बी, ख़ाली सड़कों पर चाँद की रोशनी थी। धर्मस्थल एक रहस्यमय सफेदी से ढका था। उसकी ढलवाँ छतों पर बिखरे पत्ते, ऊँचे पेड़ों पर ऊँघते पक्षी थे। कुछ देर बाद कामिल धीरे से बुदबुदाया।

''माँ जब नहीं होती... तब पता लगता है कि माँ क्या होती है।'' फिर तेजी से आगे चला गया। मैं उससे थोड़ी दूर उसके पीछे-पीछे चलता रहा।

घर पहुँचकर कामिल ने दरवाज़ा खटखटाया। मैं कामिल के पीछे था। कुछ देर में हाँफने, गहरी साँस लेने की आवाज़ें आईं, फिर दरवाज़ा खुला। सामने उसके पिता खड़े थे। पसीने में भीगे। कमर से एक अंगौछा लपेटे। दीवार का सहारा लेकर कुछ देर साँस लेते रहे फिर एक ओर हट गए।

''आओ।''

हम अन्दर आए। कामिल ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। उसके पिता उसी छोटे

कमरे में आ गए।

''कहाँ थे?'' उन्होंने कामिल से पूछा। मैंने हैरानी से कामिल को देखा। मुझे लगा उसने उन्हें बताया होगा।

'पुलिस लाइन में नौटंकी देख रहे थे।''

''कौन सी?''

''हरिश्चन्द्र तारामती।''

''हाथरस वाली?''

''हाँ।''

''अच्छा किया। मशहूर नौटंकी है। मैंने तुम्हारा खाना भी रखवा लिया है। तीनों के लिए आराम से हो जाएगा। बैठो कुछ देर... बस दक्ष यज्ञ के ये बोल पूरे कर लूँ फिर खाते हैं।''

हम फर्श पर दीवार के साथ बैठ गए। वह कमरे के बीच में आए। उन्होंने एक नृत्य मुद्रा बनाई फिर मुँह से बोल निकालते हुए धीरे-धीरे गति बढ़ाने लगे। मुँह के बोलों के साथ उनके पाँवों की गति बढ़ती जा रही थी। बदन से पसीना टपकने लगा। लम्बे बाल बिखरकर चेहरे पर आ गए। साँस फूलने लगी। उनके अंग एक दूसरे में तिरोहित होने लगे। कुछ ही क्षणों में उनकी साँस टूट गई। वह धम्म से फर्श पर बैठ गए। कुछ साँसें लीं फिर पीछे खिसक कर दीवार से टिक गए।

''लच्छू महराज को ताण्डव करना है।''

किसी ने बाहर खुली छत की नाली पर पेशाब किया। तेज़ गंध अंदर आई। वह मुँह खोल कर गहरी साँस ले रहे थे। कामिल उठा। उसने चौकी पर रखी सुराही से एक गिलास पानी निकाल कर उन्हें दिया। उन्होंने पानी पिया। कुछ छींटे चेहरे पर मारे फिर गिलास वापस कर दिया। गिलास चौकी पर रख कर कामिल वापस बैठ गया। वह कुछ सहज हो गए थे।

''आप रात को कभी नहीं सोए?'' मैंने पूछ लिया।

''नहीं'' वह हँसे।

''क्यों?''

''रचना के संसार में जब भी तुम कुछ नया रचना चाहते हो, तो सबसे पहले स्वयं को नष्ट करना होता है। अपने रचनाकार होने के बोध को मारना पड़ता है। अपने को लघु करते जाओ, लघुतर करते जाओ, इतना कि नगण्य होने के बोध से आँसू बहने लगे... फिर रचना को अन्दर जागने दो...उसे नर्तन करने दो। यही तरीक़ा है रचने का। रात में यह सब बहुत आसान होता है। यदि तुम्हारे सम्मुख कोई विराट हो तो यह और भी सरल हो जाता है। रात को इस विराट का स्पर्श मिलता रहता

है। इसीलिए मैंने जीवन भर रात में काम किया है।'' उन्होंने तौलिए से छाती का पसीना पोंछा, ''अच्छी बात पूछी तुमने। एक बात और बताता हूँ। अभी छोटे हो, पर जब बहुत से दुख, बहुत से एकान्त, बहुत सा निर्वासन मिलेगा, तब किसी विराट की शरण में चले जाना। एक बड़ा वृक्ष...बड़ी नदी... बड़ा आकाश... बड़ा पर्वत... बड़ी पृथ्वी... । तुम देखना तुम्हारा दुख तत्काल नष्ट हो जाएगा। वह तुमको आत्मसात कर लेगा। अपनी शरण में ले लेगा। तुम वही हो जाओगे''

घुटने पर चेहरा टिकाए मैं मंत्रमुग्ध सा सुन रहा था। कामिल यह सब रोज़ सुनता रहता होगा। इसीलिए इतना सब जानता है। इस तरह की भाषा, इस तरह के गूढ़ शब्द बोल पाता है।

नृत्य के बाद की उनकी थकान उतर गई थी। पसीना भी सूख गया था।

''खाना खाया जाए।'' उन्होंने कामिल से कहा। कामिल उठकर अन्दर चला गया। लौटा तो हाथों में एक बड़ी ट्रे थी। उसमें एक प्लेट में कपड़े में लिपटी रोटियाँ रखी थीं। एक बड़े कटोरे में दाल थी। कुछ प्याज़ के टुकड़े और मिर्च थी। ट्रे फर्श पर रखकर वह फिर अन्दर गया। इस बार हाथों में तीन थालियाँ थीं। उसके ऊपर कटोरी और चम्मच थे। उन्हें भी फर्श पर रख कर उसने चौकी की सुराही, गिलास हटाकर चौकी ख़ाली कर ली। चौकी को बीच में रख दिया। उसके पिता आगे खिसक आए। कामिल भी बैठ गया। हम चौकी के चारों ओर थे।

रोटियाँ कड़ी हो गईं थीं। दाल में देर तक डुबो कर उन्हें खाया जा सकता था। प्याज़ और नमक से और आसान था। हम चुपचाप खाते रहे। कुछ देर बाद कामिल सर झुकाए हुए पिता से बोला, ''मेरे पास कुछ पैसे हो गए हैं। हम जाल फिर लगवा सकते हैं।''

परीक्षा के परिणाम में मेरे अंक बहुत अच्छे थे। कामिल के सामान्य थे। नया दर्जा उसे भी मिल गया।

कामिल ने बाबू आनन्द स्वरूप का पूरा काम सँभाल लिया था। वकील अब सीधे उसे ही काम दे जाते। पूरा मसौदा भी नहीं देते। ज़रूरी ब्यौरे बता देते। किसी भी डीड या समझौते को कामिल ख़ुद टाइप कर डालता। टाइप करके सबके बस्ते पर पहुँचा देता। कचहरी में सब कामिल को पहचानने लगे थे। बाबू आनन्द स्वरूप का मुंशी या टाइप बाबू। वह किसी भी अदालत में, किसी भी बड़े वकील के चेम्बर में, बार एसोसिएशन में, यहाँ तक कि बमपुलिस के पास कमरों में बंद क़ैदियों के पास भी सीधे पहुँच जाता था। उसे कानून की दफ़ाएँ, उनकी सज़ा, अदालतों और

जजों के नाम, स्टैम्प ड्यूटी की दर, हथियारों की लाइसेंस फीस सब ज़ुबानी याद हो गए थे। उसने टाइप स्कूल से दो टाइपराइटर और किराए पर ले लिए। उन्हें कमरे के बाहर बड़े पीपल के नीचे डाल दिया। दो लड़के रख लिए। इस पर वह बाबू आनन्द स्वरूप से अलग अपना ख़ुद का काम करने लगा था।

कचहरी के अन्दर अचानक वकील बहुत बढ़ गए थे। उनके लकड़ी या टीन की छतों वाले पिजरें ऐसे बस्तों ने कचहरी के अन्दर की खुली, चौड़ी सड़क को बहुत तेज़ी के साथ घेर लिया था। जामुन, पीपल या गुलमोहर के नीचे की छाँह में बहुत सारे टाइपिस्ट एक छोटी मेज़ और कुर्सी लेकर बैठ गए थे। जमानतगीरों, गवाहों, नोटरी और मुंशियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। सिगरेट की दुकानें, छोटे होटल, साइकिल स्टैण्ड, फेरी वाले, पानी बेचने वाले, जूते पालिश करने वाले लड़के, कानून की नई किताबें बेचने वाले कचहरी के अन्दर जगह-जगह दिखते। कचहरी के बाहर की सड़कों के किनारे तरह-तरह के दुकानदार बैठने लगे थे। पर्स, छाता, अचार, पहाड़ी बिच्छू का तेल...चुम्बक की तरह पायरिया खींच लेने वाल मंजन, कंदमूल, टूटे बिस्किट और डबलरोटी के टुकड़े बेचने वाले ठेले लगाए रहते।

कचहरी के बाहर मून की पंचर की दुकान ख़त्म हो गई थी। मून ने उसकी जगह पान की गुमटी लगा ली थी। उसके पिता ने पीपल के नीचे मूर्ति रख कर छोटा सा मन्दिर बना लिया था। मन्दिर की चोरी की बिजली से ही बिजली से चलने वाला मोटर लगाकर गन्ने का रस बेचने लगा था। कामिल की इमारत में नीचे के होटलों पर भी भीड़ रहने लगी थी। वहाँ दोपहर का पूरा खाना मिलने लगा। स्टेशन पर भागकर आए या उठाए गए छोटे लड़के इन होटलों में बीस रुपयों में बिकने लगे थे। ये होटल इन छोटे लड़कों की बड़ी मंडी बन गए थे। दिन में अठारह घंटे काम, बदले में दो वक़्त का खाना, सोना। इन होटलों में थानों से लाए गए हथकड़ी वाले क़ैदी अदालत जाने से पहले खाना खाते। कचहरी की चारों ओर की सड़कें, दुकानों और स्कूटर साइकिल स्टैण्ड से भरी रहती थीं।

इस भीड़ में मुझे कामिल को अक्सर ढूँढ़ना पड़ता। कामिल अब मेरे साथ स्कूल नहीं आता। उसने हमारे स्कूल में सुबह की कक्षाएँ ले ली थीं। उनमें भी कम ही जाता। हाजिरी उसे मिल जाती थी। वह अब पूरा समय धर्मस्थल में ही बिताने लगा था। बाबू आनन्द स्वरूप ने सब कुछ उस पर छोड़ दिया था। अब कामिल उनको तीन रुपए प्रति पन्ना देने लगा था। उसने काम इतना बढ़ा लिया था कि आनन्द स्वरूप को दिन भर में उतने रुपए मिल जाते जितने उन्होंने ख़ुद काम करके पहले कभी नहीं कमाए थे।

इधर मेरे जीवन का लक्ष्य स्पष्ट था। बारहवीं की पढ़ाई यूँ ही थी। आगे बड़ा इंजीनियर बनने की तैयारी में मैंने ट्यूशन पढ़ने शुरू कर दिए थे। मेरी शाम अब दो ट्यूशन्स में बीतने लगी थी। कामिल से जब मिलना होता मैं कचहरी चला जाता या उसके घर के नीचे से ही आवाज़ देता। कामिल भी जब चाहता मेरे घर आकर आवाज़ दे देता। वह अन्दर अब भी नहीं आता था। हम कहीं भी, अपनी कोई शाम बिता लेते।

जब सूरज डूबना शुरू होता और आसमान पीला नारंगी होने लगता और परिन्दे पेड़ों को लौटने लगते, तब स्टेशन के टीन शेड को जोड़ने वाले ब्रैकेट पर, उसके पुराने बुर्ज और चौड़ी छतों पर कबूतरों के झुण्ड उतरते। गले में सुनहरे घेरे वाली वे चिड़ियाँ आतीं जो शहरों में छुपी होतीं। शेड की नालियों में छुपे, रेंगते या ऊँघते हुए छोटे कीड़ों, पटरियों पर फेंके खाने के टुकड़ों को चोंच में दबाए वे चीख़ते हुए इधर-उधर उड़ती रहतीं। तेज़ हवाएँ, पुराने प्लेटफार्म के पुराने कंगूरों के आरपार जब सीटियाँ बजाती निकलतीं तब आधी रोशनी, आधे अन्धेरे में डूबे रेल के डिब्बे पटरियों पर दूर से चमकने लगते। इंजन की सीटियों और काले धुँए के भभकों से कोई प्लेटफार्म थरथराने लगता, स्टेशन की तरफ़ बने पुराने घरों की छतों से जवान लड़कियाँ कपड़े उतारने लगतीं... चूल्हों से धुआँ उठना शुरू होता। कमरों में सिकुड़े बूढ़ों की खाँसी बढ़ने लगती। धर्मशालाओं के बाहर गठरियाँ बाँधे लोग गाँवों से आते या वापस लौटते, मन्दिरों में आरती की तैयारियों में गर्भगृहों को धोया जाने लगता, पटरियों के साथ-साथ शहर धीरे-धीरे दूर होता हुआ सोने लगता, तब स्टेशन के पुल पर अक्सर मैं और कामिल घंटों तक चुपचाप खड़े रहकर शाम को गुज़रता हुआ देखा करते।

उस दिन बैरिस्टर महताब जहाँगीर की मौत के कारण क़चहरी बन्द थी।

''तुमने कभी किसी की मृत्यु नहीं देखी न?'' कामिल मुझे उनके जनाज़े में अपने साथ ले गया था। बाबू आनन्द स्वरूप भी थे। उनके साथ ही हम क़ब्रिस्तान से लौटे थे। उन्होंने कचहरी में अपना कमरा खोल लिया था। हम तीनों वहीं बैठे थे।

सर्दियों के दिन थे। अन्धेरा जल्दी हो गया था। पूरे धर्मस्थल में गहरा सन्नाटा था। एक भी दुकान नहीं खुली थी। एक भी इन्सान नहीं था। हथेलियों को फूँक मारकर गर्म करते हुए बाबू आनन्द स्वरूप चुपचाप कमरे के उस कोने को घूर रहे थे जहाँ वह शतरंज खेलते थे।

'कचहरी अब रांड हो गई।'' कुछ देर बाद वह धीरे से बड़बड़ाए। कामिल थोड़ा आगे झुक गया। बाबू आनन्द स्वरूप ने चश्मे के मोटे शीशे के पीछे से देखा उसे। फिर मुझे।

''क्या रोशनी कर दूँ?'' मैंने पूछा।

''नहीं, पर खिड़की बन्द कर दो। ठण्डी हवा आ रही है।'' उन्होंने पीछे खुली हुई बड़ी खिड़की की ओर इशारा किया। मैंने उठकर खिड़की बन्द कर दी। मैं वापस अपनी जगह बैठ गया। कमरे में अब कोई रोशनी नहीं थी। हाथों की मुट्ठी बनाकर मैंने बगल में दबा ली।

''...यह बड़ी बात है कि जब तुम मरो तो लोग चाहते हों कि तुम और जिए होते। यह अक्सर नहीं होता। तुमने देखा आज। इस कचहरी की एक पूरी उमर, पूरी कहानी महताब जहाँगीर के साथ दफ़न हो गई। पर किसी भी कहानी के सारे हरफ़ चमकदार रोशनाई से नहीं लिखे होते। उनके आख़िरी दिन बुरे बीते थे।''

''हमें बताइए कुछ'' कामिल उनके घुटने पर हाथ रखकर फुसफुसाया। बाबू आनन्द स्वरूप ने बन्द गले के कोट के अन्दर घुसे मफलर को गले के चारों ओर लपेट लिया फिर बोलने लगे।

''मैं उनका पहला टाइपिस्ट था। सन 35 की बात होगी। क़रीब सात साल पहले पूरे देश में कम्युनिस्टों की धर पकड़ हुई थी। उन पर मुक़दमे चले। सज़ाएँ हुई थीं। उन लोगों में एक महताब जहाँगीर भी थे। अंग्रेज़ी खुफिया विभाग में ख़तरनाक लोगों की फेहरिस्त में उनका नाम सबसे ऊपर था। पहली बड़ी लड़ाई में भी उन्होंने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बाहर से हथियार लाने की योजना बनाई थी। पुलिस को इसका सूराग लग गया। वह तब देश के बाहर निकल गए। मैक्सिको, अमेरिका फिर रूस पहुँचे। रूस में क्रान्ति हो चुकी थी। लेनिन का जादू दुनिया में फैल रहा था, खासतौर से नौजवानों में। लेनिन से उनका मिलना हुआ। दो साल बाद उन्हें यहाँ कम्युनिस्ट पार्टी की नींव रखने के लिए भेज दिया गया। तभी महताब जहाँगीर इस शहर में आए। यहाँ उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ संगठन बनाना शुरू किया। उनके कुछ साथी पकड़े गए। वह भाग गए। फिर देश के बाहर चले गए। फिर आए। बाद में उन्हें पकड़ लिया गया और सन 35 में वह छूटे। जेल से छूटकर महताब जहाँगीरं ने अपने को राजनीति से पूरी तरह अलग कर लिया। इस शहर में आए और इसी कचहरी में अपनी वकालत शुरू कर दी। उन्होंने वकालत में बहुत नाम, बहुत पैसा कमाया। कम लोग किसी पेशे में इतने कामयाब होते हैं। पर यह सब कभी अचानक, एकदम से नहीं होता। उन्होंने शुरू में तीन क़त्ल करने वाले एक आदमी को, क़त्ल के अकेले गवाह से सिर्फ़ दो सवाल पूछकर छुड़ाया था। वह

रात में कातिल को देखने का दावा कर रहा था। महताब जहाँगीर ने पूछा

''कृष्ण पक्ष था कि शुक्ल पक्ष?''

वह बोल गया, ''कृष्ण पक्ष।''

''उन्होंने अदालत की खिड़कियाँ और बत्तियाँ बन्द करवा दीं। कमरे में अन्धेरा हो गया। उन्होंने उस आदमी से अपनी ओर पीठ करने को कहा। उसने ऐसा किया। वह दूसरे चार वकीलों के बीच खड़े हो गए।

''मुझे पहचानो।'' उन्होंने कहा। वह आदमी घूमा। अन्धेरे कमरे में काला कोट पहने चार आदमियों के बीच उसने ग़लत आदमी की तरफ़ इशारा कर दिया। वह दूरी सिर्फ़ 20 फीट की थी, क़त्ल के समय वह चालीस फीट दूरी से क़ातिल को देखने का दावा कर रहा था। मुक़दमा छूट गया। पर उनका असली नाम दूसरे मुक़दमे से हुआ। आज भी फ़ैसलों के पुराने दस्तावेज़ खँगालो तो उसका ज़िक्र मिल जाएगा। पर उस मुक़दमे की कभी नज़ीर नहीं दी जाती। पूरे मुल्क में वह इस एक ही मुक़दमे से मशहूर हो गए थे।'' उन्होंने साँस ली फिर चुप होकर हम दोनों को देखा। शायद अन्दाज़ा लगा रहे थे कि हम सुनना चाहते हैं या नहीं या शायद फिर थक गए थे। कुछ क्षण बाद बोलने लगे,

''वह... यहाँ की एक तवायफ़ थी। नाम भूल रहा हूँ पर उसका हुस्न और गाना दोनों मशहूर थे। लोग कहते थे कि गले में उतरता पानी दिखने की बात उसके लिए ही कही गई थी। उसने घर बनवाने के लिए यहाँ के एक महाजन से रुपए लिए या शायद नहीं लिए या शायद ले कर लौटा दिए। पर महाजन ने मुक़दमा कर दिया कि उसने दस हज़ार रुपए लिए और अब इन्कार कर रही है। वह कहती थी, महाजन झूठ बोलता है। महताब जहाँगीर ने तवायफ़ का मुक़दमा लिया। जिरह हुई, गवाह आए, कुछ काग़ज़ पेश किए गए। महताब जहाँगीर उस तवायफ़ का केस मजबूत नहीं बना पाए। गवाहों ने हलफ़ उठा कर बयान दिए कि उनके सामने तवायफ़ ने रुपए लिए। आख़िरी जिरह के पहले वाली शाम वह उनके बंगले पर आई। फूट-फूट कर रोयी कि उसका ईमान यही है कि उसने रुपए नहीं लिए थे। उसने संगीत के सुरों की कसम खायी कि अगर वह झूठ बोल रही है तो जीवन में कभी वह गले से एक सुर न निकाल सके। महताब जहाँगीर ने उससे कहा कि कल वह अदालत आए तो सामने की तरफ़ कोई पुराना, बहुत कमज़ोर कपड़ा पहन कर आए। उसके नीचे कुछ न पहने। वह अदालत में जो भी करें वह अपनी जगह से हिले भी नहीं। उसने ऐसा ही किया। जिरह शुरू हुई। मुक़दमे में अंग्रेज़ जज बाल्डविन था। महताब जहाँगीर की दलीलों का उस पर कोई असर नहीं हो रहा था। महताब जहाँगीर ने आख़िर में अपना चश्मा उतारकर मेज़ पर रख दिया और जज से बोले .. 'अब मैं

अपना आख़िरी गवाह पेश करूँगा और वह गवाह ऐसा है जिसकी सच्चाई को आप क्या, ईश्वर भी नहीं ठुकरा सकता।' अदालत में सनसनी फैल गई। महताब जहाँगीर ने तवायफ़ को कटघरे में बुलाया। उसके पास गए और अचानक एक झटके से उसकी छाती का कपड़ा फाड़ दिया। उसकी दोनों छातियाँ नुमायाँ हो गईं।

''इन्हें ध्यान से देखिए हुजूर'' महताब जहाँगीर ने बाल्डविन से कहा, ''जिस औरत की छातियाँ इतनी ख़ूबसूरत हों क्या वह कभी झूठ बोल सकती है?''

बाल्डविन ने फ़ैसला दिया कि औरत सच बोल रही है और अपने चैम्बर में जाकर नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया।'' बाबू आनन्द स्वरूप ने एक गहरी साँस ली फिर बोले ''आज भी तुम लोग बार एसोसिएशन की पुरानी फाइलें पलटो तो उसमें कहीं दबा हुआ यह मुक़दमा भी मिल जाएगा। बाल्डविन ने अपने फ़ैसले में यह लिख दिया था कि उसके इस फ़ैसले को कभी कानून की किसी किताब में न लिखा जाए, न कभी किसी मुक़दमे में इसे नजीर बनाकर कोई फ़ैसला किया जाए। इसीलिए वह मुक़दमा हमेशा के लिए फाइलों में दब गया। इसके बाद से जिस मुक़दमे को कोई न जीत सके उसे महताब जहाँगीर लेते थे। उनकी फीस पूरे मुल्क में जिन्ना के बाद थी और उसे वह कभी कम नहीं करते थे। उन्होंने बहुत बड़ा बंगला बनवाया था। बाहर के दरवाज़े से उनके पोर्च तक जाने में दो सौ पेड़ों को पार करना पड़ता था। बंगले में शाम के बाद वह किसी को नहीं आने देते थे, सिवाय मेरे। वह भी तब, जब वह मुझसे पहले कह देते कि तुम आना शाम को। किसी मुक़दमे के बारे में कुछ लिखवाते। कभी यूँ ही पास बैठाकर कोन्याक पीते हुए, पुराने क़िस्से, पुरानी बातें बताते रहते।

''मैं तुमको धर्मशास्त्रों की बातें बताता हूँ। संस्कृत बोलता हूँ, तो ये सब बातें मुझे महताब जहाँगीर ने सिखायी हैं। और मैं कहाँ से सीखता? जब कभी किसी मुक़दमे में, वह हर तरह से ग़लत इन्सान की तरफ़ से लड़ते, तो मैं उनसे झगड़ा करता। आप ऐसा कैसे कर सकते हैं? यह जानते हुए कि वह एक जघन्य हत्यारा है, कैसे उसे छुड़ाने की बात सोच पाते हैं? नीति, नियम, नैतिकता, पुण्य, सदाचार, धर्म कुछ तो होता है? आख़िर इन्हीं की रक्षा के लिए न्यायालय बने हैं। यूँ ही इसे पुराने ग्रन्थों में धर्म का स्थान तो नहीं कहा गया है? आपको ऐसे मुक़दमे नहीं लेने चाहिए।'' कुछ क्षण आनन्द स्वरूप चुप रहे। एक सिगरेट जलायी उन्होंने फिर बोले,

''उस दिन शाम से ही बारिश हो रही थी जब मैं उनसे इस तरह लड़ रहा था। बहुत तेज़ बारिश थी।

'तुम अब घर नहीं जा पाओगे।' उन्होंने मुझसे कहा फिर मेरी बातों का जो जवाब दिया वह मैं तुम दोनों को बताता हूँ। तुम्हारे जीवन में काम आएगा। उस

रात उनका मन अलग रंग में था। उन्होंने कहा, ''मैं वही काम करता हूँ जो एक दार्शनिक करता है। यानी सत्य का अनुसंधान, सत्य की खोज। और सत्य क्या होता है, कहाँ होता है? अनेक संदेहों, संशयों के बीच... इस मायावी जगत के बीच, जहाँ कुछ भी अन्तिम, शाश्वत, इकलौता सत्य नहीं है, सिवाय मृत्यु के। तो इन संदेहों, संशयों, मायाजाल के बीच उस सत्य की तलाश करनी पड़ती है, जो अगर है और जो हमें लगातार सिखाया जाता है कि हाँ है। इस तरह मुक़दमे में भी सत्य तक पहुँचने के लिए ज़रूरी है कि इसे संदेहों, संशयों, दुविधाओं के बीच ढूँढा जाए। इसलिए सबसे पहले मैं इन संदेहों को जन्म देता हूँ। शंकाओं, प्रश्नों को जीवित करता हूँ, धुँधलके का एक मायाजगत रचता हूँ, इसलिए कि सत्य तक पहुँच सकूँ। याद रखना, तुमको वह बता रहा हूँ जो कोई नहीं कहता। न्याय की दुनिया में वह कभी सत्य नहीं होता जो तुमने नंगी आँखों से देख लिया है। सत्य उनके पीछे के वे हेतु हैं, वे कारण हैं जिन्होंने उस दिखने वाले सत्य को जन्म दिया है और ये कारण कभी मनुष्य की आत्मा हैं, तो कभी उसकी प्रज्ञा, कभी उसके नेत्र, कभी उसकी चेतना है। इन्हीं सबसे वह जीवन भर संचलित होता है। किसी भी मुक़दमे में फ़ैसला करने से पहले इस बड़े सत्य को समझना ज़रूरी है। तुम्हें पता नहीं होगा कि धर्मशास्त्रों में न्याय को व्यवहार कहा गया है। मैं तुम्हें कितने ही पुराने धर्मग्रन्थों के नाम बता सकता हूँ जिन्होंने लॉ और जुडीशियल प्रोसीड्योर के बारे में, लॉ सूट के बारे में व्यवहार शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द की भी अनेक व्याख्याएँ हैं। मैं जो मानता हूँ, वह सुनो। उपसर्ग 'वि' का प्रयोग बहुत के अर्थ में 'अब' का 'सन्देह' के अर्थ में तथा 'हार' का 'हटाने' के अर्थ में प्रयेग हुआ है। यानी व्यवहार वह, जो बहुत से संदेहों को हटाए। यह परिभाषा न्याय को बहुत बड़ा क़द देती है। दर्शनशास्त्र की सभी शाखाओं का, क्रिएटिविटी के किसी भी रूप का उद्देश्य भी संदेहों को हटा कर किसी सत्य की खोज करना है...। यानी वही काम करना है जो न्याय का, कानून का है। अदालतों का, मेरा, जजों का काम है। पर एक महीन फ़र्क़ है। सत्य की खोज में दार्शनिक या रचनाकार चाहे जितना समय ले सकता है. पूरी उमर भी गुज़ार सकता है, पर न्याय में तुम यह नहीं कर सकते। दार्शनिक या रचनाकार शून्य से, अपनी प्रज्ञा से, अनुभव या आत्मसाक्षात्कार से सिद्धान्त, तर्क गढ़ता है पर न्याय गवाह, लेख, तथ्यों पर निर्भर रहता है। इसीलिए मैं हमेशा उस पक्ष को लेता हूँ जो संदेह को, संशय को, प्रतिपक्ष को जन्म दे। उसके बाद ही तो सत्य मिलेगा न? इन मुक़दमों, अदालतों में मैं भी एक ऐसा दार्शनिक, ऐसा रचनाकार हूँ जो निरन्तर सत्य की खोज में लगा है। मुझे लगता है तुम्हें अपने सवालों का उत्तर मिल गया होगा।' वह चुप हो गए।

''उस पूरी रात बारिश होती रही। वह मेरे सामने एक दुनिया खोलते फिर दूसरी, फिर तीसरी। देश, इतिहास, राजनीति, आज़ादी की लड़ाई, बड़े लोग, जजों के फ़ैसले, मुक़दमे सब उनके क़िस्सों में आते-जाते रहे। रात ख़त्म होने पर आई। फिर अचानक बारिश बन्द हुई। एकदम से आसमान साफ़ हो गया। सुबह अभी कहीं नहीं थी, पर अचानक खिड़की से रोशनी का एक टुकड़ा तिरछा होकर अन्दर आया। मैं हैरान होकर फरिश्ते की तरह आसमान से उतरी उस चमक को देखने लगा। वह समझ गए। उन्होंने मुझे इशारा किया।

''खिड़की के बाहर देखो।''

''मैंने उठकर देखा। पॉपलर की भीगी शाखों और पत्तों के पार बहुत हल्का उजाला फेंकता हुआ, हँसिया की शक्ल का ख़ूबसूरत चाँद निकला हुआ था। वह बोले, ''तुमने हमेशा सुना होगा कि चाँद रात को निकलता है। यह सुबह निकलने वाला चाँद है। रात के चाँद से बहुत ज़्यादा सुन्दर। संदेह और सत्य की दुनिया को तुम अब ख़ुद ही समझ सकते हो।''

बाबू आनन्द स्वरूप पीछे खिसक कर कुर्सी पर लुढ़क गए। बोलते समय उनके मुँह से धुआँ निकलने लगा था। बन्द गले के कोट के ऊपर मफलर को उन्होंने ठीक से कसा। सर्दी बढ़ गई थी। खिड़कियाँ बन्द थीं पर फटी लकड़ियों की चौड़ी दरारों से ठण्डी हवा आ रही थी।

''महताब जहाँगीर आख़िरी बार कचहरी सात साल पहले आए थे। दो घंटे के अन्दर चौदह लोग नकली ग्लूकोस चढ़ाए जाने की वजह से सरकारी अस्पतालों में मर गए। शहर में हाहाकार मच गया था। ग्लूकोस शहर के एक बड़े परिवार की कम्पनी का था। उसके कई विद्यालय थे। विधानसभा में भी दो बार जीत कर जा चुका था। लोगों का गुस्सा देखकर पुलिस ने कम्पनी के मैनेजर, सुपर वाइजर, और अस्पताल के स्टोर कीपर को गिरफ़्तार कर लिया। यह सब दोपहर तक हो गया। जो असली मालिक थे, वे पुलिस को नहीं मिल पा रहे थे, या पुलिस ने उन्हें एक दिन की मोहलत दे दी थी कि वह कानूनी तरीक़े से बचाव कर लें। शाम तक कई राजनीतिक दलों के नेता और संगठन जनता के साथ प्रशासन के विरोध में आ गए। पूरा शहर जानता था कि अब सिर्फ़ एक आदमी ही उनको जमानत दिला सकता है... महताब जहाँगीर। लोग कहते हैं कि महताब जहाँगीर के बंगले में जब उस घर की बहू अकेले पहुँची तो उन्होंने केस ले लिया। जो भी था, उस शाम उनका आदमी मेरे घर आया। उस पूरी रात मैं उनके साथ रहा। अपना टाइपराइटर भी ले गया था। एक उनके पास था। एक लड़का भी ले गया था। पूरे शहर में ख़बर फैल गई कि उन्होंने केस ले लिया है। सिर्फ़ मैं जानता था कि उन्होंने केस क्यों लिया है।...

''सुबह सैकड़ों लोगों ने कचहरी को घेर रखा था। पुलिस के घेरे में वे तीनों आदमी अदालत आए। पुलिस के घेरे में ही महताब जहाँगीर अन्दर गए। लोग बाहर हत्यारों को फाँसी देने की माँग कर रहे थे। बीच-बीच में महताब जहाँगीर का नाम भी सुनाई पड़ जाता था।''

बाबू आनन्द स्वरूप ने एक गहरी साँस ली फिर बोले, ''कोई नहीं जानता उस दिन क्या हुआ। महताब जहाँगीर सीधे जज के चेम्बर में गए। कुछ देर बाद बाहर निकल आए। केस की सुनवाई शुरू हुई। महताब जहाँगीर ने मालिकों की तरफ़ से अग्रिम जमानत की अर्जियाँ दीं। मालिकों को जमानत मिल गई।

''पुलिस के घेरे में ही महताब जहाँगीर बाहर आए। तब तक जमानत की ख़बर भीड़ तक पहुँच गई थी। लोग चीख़ रहे थे। न्याय को, महताब जहाँगीर को, सरकार को धिक्कार रहे थे। महताब जहाँगीर जब अपनी गाड़ी के पास पहुँचे तो किसी तरह एक बूढ़ी औरत पुलिस का घेरा तोड़कर पहुँच गई। उसने महताब जहाँगीर के मुँह पर थूक दिया।

''उसके बाद महताब जहाँगीर को कभी किसी ने नहीं देखा। कल वह अपने कमरे में मरे पड़े मिले। कोई कहता है उस रात उस बहू से उन्होंने जो फीस ली थी उसका बदला उसने ले लिया, कोई कहता है बुढ़िया का थूक उनके चेहरे से कभी साफ़ नहीं हुआ। वह उसे हमेशा रगड़ते रहते थे। कोई कहता है उनकी बड़ी जायदाद इसका कारण थी। उस दिन जज के चेम्बर में क्या हुआ कोई नहीं जानता।'' आनन्द स्वरूप ने पहलू बदला। कुछ देर चुप रहे फिर धीरे-धीरे बोले, ''शुक्राचार्य ने लिखा है कि न्यायाधीश को एकान्त में विवाद नहीं सुनना चाहिए क्योंकि पक्षपात के पाँच कारण हो सकते हैं। राग, लोभ, भय, द्वेष तथा एकान्त में वादियों की बातें सुनना। नैकः पश्येच्च कार्याणि वादिनोः श्रृणुयाद्वचः। पक्षपाताधिरोपस्य कारणानि च पंच वै। रागलोभ भयद्वैषा वादिनोश्च रहःश्रुति। यह आख़िरी संस्कृत श्लोक था जो उस दिन कोर्ट जाने से पहले मुझे महताब जहाँगीर ने सुनाया था।''

बाहर किसी की परछाईं दिखी। फिर ऊनी चादर लपेटे, कनटोप पहने एक आदमी दरवाज़े पर दिखा। बाबू आनन्द स्वरूप ने चश्मे के पीछे एक क्षण आँखें सिकोड़ कर उसे देखा। उसका चेहरा साफ़ नहीं था पर शायद वह उसे पहचान गए। कुर्सी पर पीछे की ओर लुढ़कते हुए वह धीरे से बोले, ''नहीं भाई... आज शतरंज नहीं।''

महताब जहाँगीर का क़िस्सा सुनने के बाद मैं कामिल से क़रीब दस दिन बाद मिल रहा था।

हम कामिल के घर के नीचे पथर की बेंच पर बैठे थे। खाल के खुले हिस्से को नीला करने वाली ठण्डी हवाओं के अन्धेरे और सफ़ेद कुहासे के बीच, होटलों की भट्टियों की राख में कुत्ते लोट रहे थे। सामने सड़क पर बाँस के टुकड़ों पर गुब्बारों के ढेर लटकाए, बाँसुरी ·ाजाता एक आदमी गुज़रा। मसाले की तेज़ महक अन्दर से आई। एक परिन्दा गोता मारकर चीख़ता हुआ पीपल पर बैठ गया। होटल के किचन के पीछे किसी ने नाली में उबले चावल का पानी फेंका। ऊपर खिड़की से लाटरी के पुराने फटे टिकट और चूड़ियों के टुकड़े सड़क पर गिरे।

यह रहस्यमय, पुराना शहर था। इसमें बहुत कुछ, बिल्कुल ठहरा हुआ था। सदियों से उसी तरह जड़...निस्पन्द। गलियों में इक्के वाला दिख जाता। नाली में मश्क से पानी डालते भिश्ती थे। घरों की दीवारों के बाहर तेरहवीं सदी के लैम्प अभी तक लगे थे। ऊँची चढ़ाई वाली गलियाँ थीं। मुहल्लों के पुराने, विचित्र नाम थे। क़िस्से चिराग़ों के धुएँ के साथ फैलते थे। इतिहास सिर्फ़ स्मृतियों में था। जब कभी मैं ऐसा कुछ देखता तो अचानक अपने वर्तमान से बिल्कुल अलग हो जाता। जैसे किसी ने काट कर बाहर रख दिया हो। एक दर्शक की तरह मैं अपने सामने से गुज़रते हुए सब कुछ देखता रहता। जैसे मैं उसमें नहीं हूँ। उससे इतर, असम्पृक्त, एक स्वतंत्र सत्ता हूँ। काल...जीवन... प्रकृति किसी में भी उपस्थित नहीं हूँ। एक दूसरे जगत, दूसरे धरातल पर खड़ा हूँ... इस तरह, कि जब चाहूँगा यह सब छोड़कर चला जाऊँगा, जैसे किसी एरिना में बैठकर खेल देखते दर्शक करते हैं। पर ये विचार, अनुभव मेरे अन्दर कुछ क्षणों के लिए ही होते। फिर उतनी ही गति से मैं इस शहर, इस जगत, प्रकृति, काल, स्मृति में... पूरी लिप्सा और वासनाओं के साथ लौट आता। मैं जितनी भी देर इस वर्तमान से, विराग और विरक्ति के साथ अलग रह पाता, वह इतना लघु काल था कि अनुभव और स्मृतियों से तत्काल पुछ जाता था। पर मुझे लगता था कि यदि यह लघु काल, ये अल्प क्षण दीर्घजीवी हों और स्वयं से अलग होकर देखने की इस अवस्था और बोध को मैं सिद्ध कर सकूँ, तो मैं एक ही जीवन के अन्दर दूसरा जीवन भी जी सकता हूँ। नितान्त अपने एकान्त, अपनी नीरवता और उन सघन और स्वतंत्र अनुभूतियों, का जीवन जो दुखों की, पीड़ा की नई परिभाषाएँ रच सकता है। इस माया को छिन्न-भिन्न कर सकता है।

ऊपर से कामिल के पिता उतर कर आए। हमें पत्थर की लाल बेंच पर बैठा देख कर रुक गए।

''मैं तो तुम्हें ही ढूँढ रहा था। सोचा कचहरी में देखूँ।'' उन्होंने कामिल को देखकर उल्लास से कहा।

कामिल उठा। उसने अपने गले का मफलर उतार कर उनके गले में डाल दिया

फिर उसे अच्छी तरह चारों ओर लपेट दिया। उसके लटके हिस्से को उनके कुर्ते के अन्दर डाल दिया।

''अरे अच्छा किया तुमने... मैं तो सोच रहा था कि क्या करूँ। बाहर तो बहुत सर्दी है।''

उनके कन्धे पर एक बड़ा झोला लटक रहा था। कनटोप के नीचे उनके लम्बे बाल छुप गए थे। खद्दर के मोटे, ऊनी मोजे पाँव में थे। कपड़े के जूते थे। ऊनी पायजामा और कुर्ता था।

''रात को मैंने एक बिल्कुल अद्‌भुत चीज़ पढ़ी।'' उन्होंने कामिल के कन्धे पर हाथ रखकर उसे वापस बेंच पर बैठा दिया।

''दक्ष यज्ञ के सिलसिले में ही मैं नृत्य पर कुछ देख रहा था। एक प्रसंग मिला। पार्वती नृत्य कर रही थी। नाचते नाचते ही उसके एक कान का कुण्डल गिर गया। अब क्या हो?'' मैं मुग्ध होकर उन्हें देख रहा था। आँखें फैलाकर, चेहरे पर भाव पैदा करके, हाथ की मुद्राएँ बनाते हुए वह बोल रहे थे, ''बड़ा संकट आ गया। कल्पना करो ज़रा... नृत्य अपने चरम पर है। सब समाधिस्थ से उसे देख रहे हैं। कला की विराटता, सौन्दर्य साक्षात है। पर दोष तो पैदा हो गया। एक कान में कुण्डल नहीं है। नृत्य रुक नहीं सकता। पर कुण्डल एक कान में नहीं तो रसभंग होता है। सौन्दर्य बोध नष्ट होता है। कला की निर्दोष सम्पूर्णता खण्डित होती है। अब क्या करे माँ? नाचते-नाचते ही उन्होंने एक ऐसी नृत्य मुद्रा बनाई कि एक पैर के अंगूठे से कान में कुण्डल पहन लिया। मेरे मन में तभी जैसे एक प्रकाश फैल गया। अब ऐसी ही एक मूर्ति बनाऊँगा। नृत्यलीन पार्वती। जानते हो, भरतुमनि ने एक सौ आठ तरह की नृत्य मुद्राओं के बारे में बताया है। चिदम्बरम के नटराज मन्दिर में जाओ तो उसके गोपुरम में सभी एक सौ आठ नृत्य मुद्राएँ देखने को मिल जाएँगी। पर मैं बिल्कुल अलग रचूँगा। ऐसी मुद्रा जो भरतमुनि ने भी नहीं लिखी। पाँव के अँगूठे से कुण्डल पहनती पार्वती। अहा!'' उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद आँखें खोलकर मुझे देखा, ''तुमने तो बहुत पढ़ा होगा अंग्रेज़ी में। कहीं और मिलता है ऐसा कोई प्रसंग? ज़रा बताना मुझे।''

मैंने सर हिला दिया।

''फिर क्या हुआ जानते हो?'' उन्होंने कामिल को आगे बताया, ''अब मैं सोता कैसे? नींद आने का कोई प्रश्न ही नहीं था। कहाँ जाऊँ? कौन सन्देह दूर करेगा? कौन रोशनी दिखाएगा? मैं फिर सुबह ही निकल गया। ऐसे में एक ही शरण है मेरी। तुम जानते ही हो। तुमने देखा भी है उन्हें। गिलिस बाज़ार की एक छोटी सी कोठरी में फ़कीरों की तरह रहते हैं। मैं वहीं चला गया। लकड़ी के टाल के पीछे

की वह गली अब बहुत सँकरी हो गई है। लोगों ने जानवर बाँध लिए हैं। उनका गोबर पड़ा रहता है। हमेशा पानी भरा रहता है। मैं वह सब पार करता हुआ पहुँचा, तो देखा अन्धेरी कोठरी के कोने की एक दीवार पर चूना पोत रहे हैं। पास बाल्टी में घुला हुआ चूना रखा था। हाथों में मोटा, नारियल की जटाओं का ब्रश था। बदन पर एक ऊनी सदरी थी बस। कमर के नीचे अगौंछा। दरवाज़े पर मैं पहुँचा तो उन्होंने घूम कर देखा। पहचानते कैसे? मैं ही बहुत दिनों बाद गया था। उनकी आँखें भी कमज़ोर हो गई थीं। मैं और क्या करता? बस चरणों पर सर रख दिया।

'मुझे पता था तुम आओगे।' उन्होंने चूने में भीगा ब्रश एक ओर रख लिया। मेरे सर पर हाथ फेरा... 'बैठो... मैं ज़रा हाथ धो लूँ।'

''मैं उठ गया। वह भी उठे। अब उनको घुटनों की हडिड्याँ परेशान करती हैं। कोने में रखी पानी की बाल्टी से उन्होंने हाथ मुँह धोए। वह कोठरी के बीच ज़मीन पर बैठ गए। मैं सामने बैठ गया।

'ज़मीन पर इसलिए बैठा हूँ क्योंकि रचनाकार को कभी मिट्टी के सच को नहीं भूलना चाहिए। यहीं तो मिलना है अन्त में।' मैंने ज़मीन की धूल माथे पर लगायी फिर उन्हें पूरी बात बतायी। मूर्ति के बारे में बताया, यह भी कि... 'मेरे पास कोई दृष्टि नहीं है, स्पष्टता नहीं है... सिर्फ़ संदेह हैं... संशय हैं... शंकाएँ हैं।'

''वह सुनते रहे फिर बहुत धीरे-धीरे बोले। 'यही तो रचनात्मकता का प्राण है। संदेहों के बीच किसी सत्य को ढूँढते रहना, उसका उद्घाटन करना ही रचनाकार का काम है। यही काम दार्शनिक भी करता है। दुनिया का हर बड़ा आदमी भी हमेशा संदेहों में रहा है। जहाँ भी संशय ख़त्म हो गए, वहाँ कुछ भी नया रचा नहीं जा सकता। न कृति, न समाज, न मनुष्य।' फिर उन्होंने जो बताया तो मुझे जैसे सब कुछ आलोकित होकर दिखने लगा। उन्होंने ऋग्वेद का नासदीय सूक्त सुनाया। सृष्टि सिर्फ़ अनिश्चितता और संदेहों के बीच जन्मी। कुछ भी निश्चित नहीं था, कुछ भी स्पष्ट नहीं था, तब यह विराट सृष्टि व्यक्त होना शुरू हुई। क्यों यह सृष्टि बनी, किसने बनाई, कोई नहीं जानता। सब संदेह में, धुँधलके में। इसलिए एक ऐसी मूर्ति बनाओ जिसमें सब कुछ अव्यक्त हो, अस्पष्ट हो, धुँधलके में हो। पता ही नहीं लगे कि स्त्री है या पुरुष। कौन सा अंग कहाँ है? मिट्टी के साथ क्या-क्या मिला है? कुछ भी स्प्ष्ट नहीं सिवाय एक चीज़ के। कान तक उठा हुआ पाँव का वह अँगूठा। सिर्फ़ वह छोटा सा अँगूठा ही मूर्ति में स्पष्ट दिखे, प्रतिष्ठित हो, दृश्यमान हो, क्योंकि वही रचनात्मकता का मर्म है, प्राण है, प्रतीक है। निरन्तर, चिरन्तन, शाश्वत संदेहों के बीच सिर्फ़ रचनात्मकता के प्रति निष्ठा और समर्पण को व्यक्त करता वह अँगूठा। मैं और क्या करता तुम बोलो। मैंने पाँवों पर सर रखा और उठ गया। दरवाज़े तक

वह मुझे छोड़ने आए फिर चले गए। मैंने कुछ क्षण खड़े रहकर देखा। कोठरी के उसी अन्धेरे कोने में वह फिर दीवार को चूने से पोत रहे थे। लौटकर मैं आया तो एक बात और तय कर ली। पूरी मूर्ति मिट्टी की बनाऊँगा पर पैर का वह अँगूठा सोने का। चमकता हुआ एक हिरण्यगर्भ। उस गर्भ से जन्म लेता एक महाविराट, रचनात्मकता का जगत। देखो...'' उन्होंने कन्धे पर लटका झोला कामिल को दिखाया, ''सब बेचने ले जा रहा हूँ। नारियल के जटाजूटधारी, तीन पेटिंग्स, कविता की किताब, सारे मंजन... भाँग के चूरन की शीशियाँ। सब बेचकर मूर्ति का सामान लाऊँगा। हो सकता है कुछ देर भी हो जाए लौटने में इसलिए इन्तज़ार मत करना। ज़रा सर्राफा बाज़ार भी चला जाऊँगा। पता करूँ, सोने का क्या भाव चल रहा है?''... उन्होंने झोले को कन्धे पर ठीक से लटकाया। मफलर को गले में कसा और बाहर सड़क पर निकल गए। कुहासे, ठण्ड, हल्के अन्धेरे उजाले के बीच सड़क के एक ओर थोड़ा झुके, जाते हुए वह कुछ देर दिखते रहे फिर धुन्ध में खो गए।

कामिल उसी तरफ़ देख रहा था जिधर वह गए थे।

''मेरा पिता बहुत बड़ा इन्सान है।'' कामिल कुछ देर बाद फुसफुसाया। मेरी तरफ़ चेहरा घुमा लिया उसने। मैंने देखा। उसकी आँखों में पानी भरा था। मैं कुछ नहीं बोला। संदेहों के बीच सत्य की खोज करना ही दर्शन है, रचना है, न्याय है। संदेह शाश्वत हैं, वांछित हैं। संदेह नहीं हैं तो पैदा करो, उनका वरण करो। संदेह में जियो, संदेह में मरो। नेति...नेति...। यह भी नहीं... यह भी नहीं। यही सत्य है बस। जीवन का मर्म क्या यही है? क्या जीवन का अर्थ यही है? उद्देश्य, गति यही है? क्या इसी को जीवन कहते हैं? हाँ! धर्मशास्त्र यही कहते हैं। महताब जहांगीर यही कहते हैं। कामिल के पिता, उनके गुरु यही कहते हैं। न्याय की महान पुस्तकें, दर्शनशास्त्र के प्रचंड विद्वान यही कहते हैं। मनुष्यों को, समाज को रचने वाले, आन्दोलन करने वाले विश्व पुरुष यही कहते हैं। सुबह उगने वाला चाँद, औरत की छाती की गवाही, नाचते हुए पाँव के अंगूठे से कुण्डल पहनने वाले विचित्र सत्य भी यही कहते हैं।

मैंने सामने देखा। संदेहों के बीच निरन्तर सत्य को तलाशने वाला धर्मस्थल कोहरे में डूबा हुआ था। कुछ गिद्ध उसकी छत पर आ गए थे। सर्दी में कहीं कोई चिड़िया मरी होगी। कोई बिल्ली का बच्चा मरा होगा।

एक साँड़ डकारता हुआ निकला। एक कूड़ा गाड़ी निकली। मुझे कामिल की ठहरी हुई, धीमी पर बहुत मजबूत आवाज़ सुनाई दी।

''अँगूठा अब सोने का ही बनेगा।''

दस दिनों से बाबू आनन्दस्वरूप धर्मस्थल नहीं आए थे। उन्हें 'काला ज्वर' हो गया था। कामिल दो बार उनके घर जा चुका था। उन्हें काम के बारे में बताता था। रुपए देता था। तबीयत के बारे में पूछता था। कुछ सामान चाहिए होता तो बाज़ार से ला देता था।

"अब जाना तो मै भी चलूँगा।" मैंने कामिल से कहा, "एक बार देख लेना ज़रूरी है।"

सुबह कामिल ने मुझे आवाज़ दी। वह साइकिल पर था।

"मैं जा रहा हूँ।" उसने कहा, "चलते हो?"

मैं कामिल के साथ हो लिया। कामिल साइकिल चला रहा था। मैं आगे बैठा हुआ था।

शहर के बाहर गंगा के किनारे आज़ाद नगर में बाबू आनन्द स्वरूप का घर था। महापालिका ने जब वहाँ प्लाट काटकर नीलाम किए तब आनन्द स्वरूप ने एक छोटा सा प्लाट ले लिया था। कुछ साल पहले उन्होंने उस पर घर बनवा लिया था। किराए का मकान छोड़कर वहीं रहने लगे थे। उनके साथ उनकी बेटी और उसकी बेटी रहती थी। उनकी बेटी अपने पति से अलग होकर बारह साल पहले उनके पास रहने आ गई थी। वह छोटा-सिलाई स्कूल चलाने लगी थी। पति पत्नी के बीच सुलह हो जाए यह कोशिश आनन्द स्वरूप करते रहते थे। इस कोशिश में ही कभी वह एक दो दिन इनके घर आ जाता था, कभी वह उसके पास चली जाती। पर बेटी की बेटी के बड़ी और समझदार हो जाने पर इस कोशिश को रोक दिया गया था। उसे वह आदमी अच्छा नहीं लगता था। पिछले चार सालों से उनमें कोई सम्पर्क नहीं था। यह सब कामिल ने मुझे तब बताया था जब उसने बाबू आनन्द स्वरूप के साथ बैठना शुरू किया था।

छुट्टियों वाली सर्दियों की फ़ुरसत की सुबह थी। ख़ुशनुमा... चमकदार। सड़कें ख़ाली थीं। बड़े-बड़े बंगलों के बीच से गुज़रती सड़क पर दोनों ओर की दीवारों पर बैगनी फूलों की बेलें लटकी थीं। ऊँचे घने पेड़ों के नीचे क्यारियों में बड़े और चमकदार फूल खिले हुए थे।

मैं पहली बार इस तरफ़ आया था। कुछ ही देर में हम पहुँच गए। शहर से दूर वह एक शान्त इलाक़ा था। चारों ओर नए मकान बने थे। कोई-कोई ही दुमंज़िला था। ज़्यादातर मकान कम पैसों में बनाए गए थे। आनन्द स्वरूप का मकान दूर से दिखता था। छोटा और नारंगी फूलों की बेल से ढका। हरे रंग का छोटा लोहे का दरवाज़ा था। दरवाज़े के ऊपर कड़ा लगा था। कड़ा हटा कर हम अन्दर गए। अन्दर शान्ति थी। कामिल ने साइकिल एक ओर चहारदीवारी के साथ खड़ी कर दी। एक

संकरा, ईटों का बना रास्ता अन्दर गया था। उस रास्ते के दोनों ओर फूल लगे थे। थोड़ी सी जगह में पपीते, केले और अमरूद के पेड़ थे।

मैं कामिल के पीछे था। अन्दर दाएँ हाथ घूमने के बाद दो छोटी सीढ़ियाँ ऊपर गईं थीं। सीढ़ियाँ चढ़कर कामिल ने लकड़ी का छोटा सा दरवाज़ा खोला। एक खुली जगह नज़र आई। यहाँ कुछ गमले रखे थे। एक कुर्सी पर अख़बार पड़ा था। छोटी मेज़ पर चाय के दो ख़ाली गिलास थे।

इसी जगह से अन्दर फिर एक कमरा था। कमरे का दरवाज़ा खुला था। कामिल दरवाज़े पर रुक गया। मैं उसके पीछे था। हम बाहर की तेज़ रोशनी से एकदम कमरे में आ गए थे। कुछ क्षण रुकने और आँखें स्थिर होने के बाद मैंने देखा। बाबू आनन्द स्वरूप एक पलंग पर तकिए के सहारे थोड़ा उठे हुए बैठे थे। छाती तक कम्बल था। सर पर ऊनी टोपी थी। उनके सिरहाने एक लड़की बैठी थी। उसके एक हाथ की प्याली में बिस्किट रखे थे। बाबू आनन्द स्वरूप के हाथ में दूध का गिलास था। एक दूसरे हाथ में एक आधा खाया बिस्किट था।

आहट सुनकर उन्होंने सर उठाया। कामिल को देखकर अन्दर आने का इशारा किया। मुझे भी।

''कैसे हैं?'' कामिल ने पलंग के पास आकर पूछा। पता नहीं, बाबू आनन्द स्वरूप से या लड़की से।

''...ठीक हूँ... अगर अब ज्वर न आए।'' आनन्द स्वरूप ने कहा।

''कमज़ोरी बहुत है।'' लड़की बोली। वह उसी तरह हाथ में प्याली लिए बैठी थी। उसकी आवाज़ बहुत गहरी थी। उसमें ऐसा गाढ़ापन था जो लड़कियों की आवाज़ में नहीं होता। मैं उसे पीछे से देख पा रहा था। वह थोड़ा आगे की तरफ़ झुकी थी। उसकी गरदन के पिछले हिस्से पर सुनहरे रोएँ थे जो उसकी साँवली खाल पर चमक रहे थे। उसकी रीढ़ की हड्डी पर चिकने मांस की मोटी पर्त थी। चौड़ी पीठ पर कपड़ा फँसा हुआ था। मैं उसका पूरा चेहरा नहीं देख पा रहा था।

''तुम कैसे हो?'' बाबू आनन्द स्वरूप ने मुझसे पूछा।

''ठीक हूँ।'' मैं थोड़ा आगे आ गया। अब लड़की ने मुझे और मैंने उसे देखा। उसके चेहरे पर लुनाई और उस लुनाई की ख़ास चमक थी। चेहरा भरा हुआ था। आँखों के पानी में पारदर्शिता थी। उसके बाल खुले हुए थे। वे घने थे और दोनों कन्धों पर गिरे हुए थे। उसके चेहरे पर एक दृढ़ता थी जो उसके साँवले रंग, काली आँखों और घने बालों ने पैदा की थी।

''यह दाक्षायणी हैं।'' कामिल ने उसका परिचय कराया।

मैं कुछ कहता उसके पहले वह बोली।

''मैं इन्हें जानती हूँ।'' वह अब सीधी होकर बैठ गई थी, ''नाना हमेशा आपकी तारीफ़ करते हैं।'' वह मुस्कुरायी, ''आप पढ़ने में बहुत होशियार हैं।''

मेरा चेहरा लाल हो गया। कान गर्म हो गए। मैं झेंप गया।

गिलास का दूध ख़त्म हो गया था। आनन्द स्वरूप ने गिलास उसे दे दिया।

''बिस्किट और लेंगे?'' उसने पूछा।

''नहीं।'' वह धीमी आवाज़ में बोले। वह पलंग से उठ गई।

''इतना खाने में ही थक जाते हैं।'' उसने कामिल से कहा।

''डाक्टर अब क्या कहता है?''

''कहता है अफ्रीका से कोई नया बुखार आया है। बाद में बहुत दिनों तक कमज़ोरी रहती है। शायद अभी पन्द्रह दिन और लग जाएँ।''

वह कामिल को देखते हुए धीरे-धीरे बोल रही थी।

''मैं लेटूँगा।'' आनन्द स्वरूप धीरे से बोले।

उसने हाथ की प्याली कामिल को पकड़ायी। झुककर उन्हें सहारा दिया। आनन्द स्वरूप थोड़ा नीचे खिसक कर पलंग पर पूरा लेट गए। उसने उनके गले तक चादर डाल दी। सर का टोप ठीक कर दिया। एक दीवार की तरफ़ जाकर उसने कमरे की बत्ती बन्द कर दी।

''आप सो लीजिए। हम अन्दर हैं।''

उसने आगे जाकर कामिल को आने का इशारा किया।

''आओ।'' कामिल ने मुझसे कहा, ''अन्दर बैठते हैं।''

अन्दर दो कमरे और थे। उस कमरे से थोड़े बड़े। पहले कमरे में रस्सी के ऊपर कपड़े लटक रहे थे। दो खाट पड़ीं थीं। एक खाट पर बिस्तर मोड़कर रखे थे। दूसरी खाट पर कुछ कपड़े पड़े थे। कोने में पुराने जमाने की एक अलमारी थी। दो चौकियाँ थीं। एक पर देवताओं की प्रतिमाएँ थीं। दूसरी थोड़ी नीची थी और बैठने के लिए बनी थी। उस पर कुछ कटी हुई सब्जियाँ रखी थीं। उसके साथ के कमरे की केवल एक झलक दिख रही थी। उसमें कपडे के अलग-अलग ढेर पड़े थे। पैरों से चलने वाली दो सिलाई मशीन रखीं थीं। कोने में मेज़ कुर्सी थी। मेज़ पर लैम्प रखा था। कुछ किताबें थीं। जिस कमरे में हम थे उसके बाहर खुली जगह को टीन से ढक कर रसोई बनाया गया था। एक बड़ी मेज़ पर स्टोव रखा था। कोने में फर्श पर मिट्टी का चूल्हा भी बना था। पत्थर के प्लेटफार्म पर बर्तन रखे थे। उसके बाहर छोटा आँगन था। उसमें रखे तख्त पर गेहूँ सूख रहे थे। पिंजरे में तोता था। पौधों को पानी देने का हजारा था। वहाँ रस्सी पर धूप में कुछ कपड़े सूख रहे थे।

''बैठिए।'' उसने खाट पर पड़े कपड़े एक ओर कर दिए। दीवार के साथ रखा

मूढ़ा उठाकर खाट के पास रख दिया। कामिल खाट पर बैठ गया। मैं मूढ़े पर। वह सामने दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गई।

''आपका नाम बहुत सुन्दर है।'' मैंने कहा।

''माँ ने रखा है।''

''कहाँ हैं वह?''

''सिलाई स्कूल गई हैं। शाम तक लौटती हैं।''

''इसका एक सरल और छोटा नाम भी है... मुनिया।'' कामिल हँसा। वह मुस्कुरा दी।

''आप चाहें तो छोटे नाम से पुकारें...''

''नहीं, मैं दाक्षायणी ही कहूँगा।'' मैंने कहा।

आँगन की धूप से पूरे कमरे में रोशनी थी। कामिल ने जेब में हाथ डाल कर एक लिफ़ाफ़ा निकाला। उसमें रुपए थे। लिफ़ाफ़ा उसने दाक्षायणी को दे दिया।

''मिट्टी का तेल ख़त्म है। दवाएँ भी लानी होगीं। कम्पाउण्डर अभी इंजेक्शन लगाने आएगा।'' लिफ़ाफ़ा लेकर वह बोली। वह पाँव के अंगूठे से फर्श खुरच रही थी। मैंने देखा। उसके अंगूठे में नाखून के नीचे एक तिल था।

मुझे लगा मेरी वजह से वह कुछ संकोच कर रही है वरना शायद वह कामिल से पूरे अधिकार के साथ बोलती।

''मैं ला देता हूँ। मुझे तेल के लिए डिब्बा और दवाओं का पर्चा दे दो।'' कामिल उठ गया। वह अन्दर आँगन की तरफ़ चली गई। कुछ देर बाद लौटी। उसके हाथ में पाँच लीटर का प्लास्टिक का जेरीकेन था। उसने कामिल को दे दिया। साथ वाले कमरे में जाकर मेज़ पर रखा दवाओं का पर्चा ला दिया।

कामिल ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा, ''तुम चाय पिओ तब तक।''

''इन्हें ख़ाली चाय नहीं पिलाऊँगी। जब आओ तो जो खाने का मन हो लेते आना। तभी साथ चाय पिएँगे।''

कामिल मुझे देखकर मुस्कुराया।

''अगर तुम इन्हें तैयार कर सको तो तुम्हें कुछ अच्छी कविताएँ सुनने को मिल सकती हैं।''

मैंने विस्मय से दाक्षायणी को देखा। उसने सर झुका लिया। कामिल चला गया।

वह खड़ी थी। मैं मूढ़े से उठ गया।

''आँगन में चलते हैं। वहाँ धूप है।''

उसने एक बार आँगन की धूप को देखा।

''पर नाना ने आवाज़ दी... कोई ज़रूरत हुई तो सुनाई नहीं पड़ेगा।''

मैं फिर बैठ गया। वह भी अब खाट पर बैठ गई। उसके पैर हवा में थे। वह पैर हिलाने लगी। मैंने उसके पंजों को देखा। उसकी उँगलियाँ लम्बी और एक-दूसरे से चिपकी हुई थीं। पंजे का मांस गद्दे की तरह मुलायम और फूला हुआ था।

अचानक उसने अपने पैर हिलाना रोक दिया। उसने मुझे पंजे देखते हुए देख लिया था। मैंने सर उठा कर देखा उसे। मैं कविता की बात करना चाहता था।

''आपने तो देखा ही होगा। क्या कामिल का घर बहुत छोटा है?'' उसने पूछा।

''हाँ।''

''सिर्फ़ दो कमरे हैं न... इससे छोटे। एक में भाई परिवार के साथ रहते हैं और एक में कामिल और उसके पिता?''

''हाँ।''

वह चुप हो गई। मुझे लगा वह फिर पैर हिलाएगी। पर वह कुछ सोच रही थी। शायद जब सोचती थी तब पैर नहीं हिलाती थी।

''उनका बनाया हुआ कुछ बिकता है?''

''कभी-कभी।''

''फिर ख़र्च कैसे चलता है?''

''भाई है...कामिल है... कभी पिता को किसी स्कूल के वार्षिकोत्सव में नाटक तैयार करने का काम मिल जाता है... कभी स्मारिका निकालना। कभी घर में कोई लड़की नृत्य सीखने आ जाती है तो कभी पेंटिंग की कोई ट्यूशन ले लेते हैं।''

''कामिल अपने पिता को बहुत मानता है न?''

''हाँ।''

''अच्छा... आप तो वहाँ भी जाते हैं जहाँ टाइप का काम होता है। चार ही टाइपराइटर हैं न?''

''हाँ।''

'और नहीं बढ़ सकते?''

'मतलब?''

''मतलब अगर और टाइपराइटर बढ़ा लिए जाएँ?''

''वहाँ अब जगह नहीं है। वह तो लायर्स एसोसिएशन का कमरा है जहाँ वह बैठता है। किसी तरह दो टाइपराइटर रखने की जगह मिल गई है। इसलिए कि वहाँ काम होने से वकीलों को बहुत आसानी होती है। दो टाइपराइटर का काम पेड़ के नीचे मेज़ कुर्सी डालकर चलता है।''

''पर सिर्फ़ चार टाइपराइटर रख कर ही पूरा जीवन काटना तो ठीक नहीं है न?''

मैं कुछ नहीं बोला।

''कचहरी तो बहुत बड़ी जगह होती है। बहुत सारे दूसरे काम भी होते हैं!''

''हाँ... बहुत... हर समय आदमी आते रहते हैं। न जाने कितने दफ्तर, कानून, अधिकारी।''

''कामिल और भी कुछ कर सकता है?''

''क्या?''

''कुछ भी, जिसमें वह और ज़्यादा पैसे कमा सके।''

मैं चुप रहा। वह शायद समझ गई।

''देखिए, मुझे यह सब नहीं पूछना चाहिए। पर आप तो उसके दोस्त हैं। दो घरों का ख़र्चा इससे नहीं चल पाता।''

मैं चुप रहा। वह हँसी धीरे से।

''मुझे यह सब नहीं कहना चाहिए था। सच पूछिए तो मुझे बात करना ही नहीं आता। सब इसीलिए मुझे मूर्ख कहते हैं। दिमाग़ और ज़बान में कोई तालमेल ही नहीं है। आप पहली बार मेरे घर आए हैं और मैं यह सब पूछने और कहने लगी।'' उसके चेहरे के साँवलेपन पर उसकी आँखों का कालापन भारी पड़ रहा था। उनमें चौकन्नी और धारदार चमक थी।

मैं चुप था। वह भी चुप हो गई। मेरा मन कविता की बात से पूरी तरह हट गया था। अचानक मुझे लगा कि कामिल जल्दी आए और मैं उठ जाऊँ।

''आपके नाम का मतलब क्या है?'' मैंने बात बदलने के लिए पूछा।

''पार्वती का नाम है।''

तभी अचानक आनन्द स्वरूप ने आवाज़ दी या शायद वह कराहे। वह एक झटके से उठी और दौड़ती हुई कमरे के बाहर चली गई।

कमरे के अन्दर मुझे बेचैनी होने लगी। ताज़ा हवा में साँस लेने का मन हो रहा था। मैं उठा और टीन की छत के नीचे से होता हुआ आँगन में आ गया। आँगन की खिली धूप में सबसे पहले मैंने गहरी साँस ली फिर चारों ओर देखा। दो ओर नीम के ऊँचे घने पेड़ थे। उनकी शाखों पर बन्दर बैठे ऊँघ रहे थे। दूसरी ओर नीले साफ़ आसमान की तरफ़ उठी कुछ चिमनियाँ थीं। आँगन में फर्श के एक कोने में उबली हुई दाल पड़ी थी। उस पर चिड़ियों का झुण्ड शोर मचाता कूद रहा था। मुँडेर पर बैठी गिलहरी मुझे हैरानी से देख रही थी। पिंजरे के तोते ने मुझे देखकर पंख फड़फड़ाए। मैं कुछ देर तक गहरी साँस लेता रहा।

''मैं आपको अन्दर देख रही थी।'' दाक्षायणी आँगन में आ गई। रस्सी पर सूखते कपड़ों को उसने मेरी निगाह से बचाने के लिए उठा लिया।

''मैं इन्हें रख आऊँ।'' वह कपड़े लेकर अन्दर चली गई। लौटी तो उसके हाथ में वही मूढ़ा था जिस पर मैं बैठा हुआ था।

''आप बैठिए... कामिल बस आता ही होगा। कविता की बात कामिल ने ऐसे ही कह दी। मैं क्या लिखूँगी।'' वह बोली।

''आप अन्दर गईं थीं। कुछ तकलीफ़ थी क्या?''

''नहीं... बस थोड़ा सा थूक बह कर गले पर गिर गया था। उसी को साफ़ करने के लिए बुलाया था।''

''अगर बुखार न उतरे तो मेडिकल कॉलेज के किसी बड़े डाक्टर को दिखाना चाहिए।'' मैं खड़ा ही था। कविता की किसी भी बात से बचने के लिए मैं बोलता जा रहा था।

''हाँ... तीन दिन और देखते हैं।'' उसने झुककर तख्त पर पड़े गेहूँ को हाथ से छुआ। वे सूख गए थे। वह उसी तरह झुकी हुई उन्हें एक ओर समेटने लगी। मैंने देखा, उसके कुर्ते का कपड़ा उसके गले के नीचे से झूलकर उसकी देह से बिल्कुल अलग हो गया था। दो कच्चे अमरूद जैसी छातियाँ उसके अन्दर चमक रहीं थीं। मैंने पहली बार किसी लड़की की नंगी छातियाँ देखी थीं। मैं हैरानी से उन्हें देखता रहा। मेरे पूरे बदन में सनसनी दौड़ गई। तेज़ी के साथ वहाँ से हटकर मैं तोते के पास चला गया।

गेहूँ एक ओर समेटकर वह सीधी हो गई।

तब तक कामिल आ गया। उसके हाथ में मिट्टी के तेल का डिब्बा था। दूसरे में काग़ज़ का बड़ा लिफ़ाफ़ा था जिसके अन्दर खाने का कुछ समान था। उसकी चिकनाई लिफ़ाफ़े के बाहर तक दिख रही थी। कामिल वहीं, टीन की छत के नीचे रुक गया। वह कामिल के पास आ गई।

उसने कामिल के हाथ से दोनों चीज़ें ले लीं।

''दवाएँ वहीं रख दी हैं।'' कामिल ने कहा।

''बैठो... मैं चाय बनाती हूँ।'' वह अन्दर चली गई।

कामिल भी आँगन में आ गया। उसने चारों ओर एक बार देखा फिर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुस्कुराया।

''कविता सुनी?''

मैं कुछ नहीं बोला। मैंने सर घुमा कर देखा। चिड़ियों के झुण्ड के बीच मुँडेर पर बैठी गिलहरी आ गई थी। चीख़ती हुई वे इधर-उधर उड़ रहीं थीं।

हम जब लौटने लगे तो फिर बाबू आनन्द स्वरूप के पास रुके। दाक्षायणी हमारे पीछे थी। वह सो रहे थे। धीरे से बिना कोई आहट किए हम कमरे के बाहर आए। दाक्षायणी हमें बाहर के हरे दरवाज़े तक छोड़ने आई। दरवाज़े पर आकर उसने अपने कुर्ते की जेब में हाथ डालकर एक काग़ज़ का टुकड़ा निकाला। काग़ज़ उसने कामिल को दिया।

''कोई आया था नाना से मिलने। कचहरी में उसका कुछ काम था। मैंने उनसे कह दिया कि तुम वहीं हो और शायद उसका वह काम कर दो। उसने अपना पता दिया है। तुम कल तक उससे मिल लेना। पैसे की पूरी बात साफ़-साफ़ करना।''

कामिल ने काग़ज़ हाथ में ले कर देखा। उस पर किसी कर्बला का पता लिखा था। नीचे कोई नाम भी था। कामिल ने काग़ज़ जेब में रख लिया।

हम दरवाज़े से बाहर निकल आए। दाक्षायणी दरवाज़े के बाहर नहीं आई। आधे दरवाज़े के पीछे वह थोड़ा झुकी खड़ी रही। उसका पूरा शरीर आधा दिख रहा था। आधे बाल...आधा साँवला चेहरा...आधी देह।

लौटते समय मैं साइकिल चला रहा था। कामिल आगे बैठा था। हम चुप थे। काग़ज़ वह कामिल को अन्दर भी दे सकती थी। मैं सोच रहा था।

कामिल दूसरे दिन कर्बला गया। वहाँ क्या हुआ, क्या काम था—उसने मुझे नहीं बताया। मैंने भी नहीं पूछा।

इसके एक हफ्ते बाद ही कामिल ने घर में लोहे का नया जाल लगवा लिया।

दो हफ्ते बाद आनन्द स्वरूप कचहरी आए। चार दिन बाद ही फिर उन्हें बुखार आ गया। दो महीने से वह घर पर ही थे।

दोपहर को मैं स्कूल से लौटा ही था कि माली के लड़के ने बताया, कोई मिलने आया है। कमरे में आकर देखा मैंने। बाहर के दरवाज़े पर दाक्षायणी खड़ी थी।

''अरे आप हैं... अन्दर आइए न... वहाँ क्यों खड़ी हैं।'' मैं तेजी से उसके पास आया।

''नहीं, मैं जल्दी में हूँ।'' वह परेशान लग रही थी ''मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। डाकखाने पर टैम्पो से उतर कर कचहरी जा रही थी तो रास्ते में इस दरवाज़े पर आपके पिता का नाम देखा। कामिल ने भी बताया था इसलिए आ गई। कामिल से मिलना ज़रूरी है... उसने मुझे कचहरी के अन्दर आने से मना किया हुआ है। क्या आप मुझे उससे मिला देंगे?''

''हाँ... मैं चलता हूँ।'' मैंने कहा, ''पर आप अन्दर तो आइए, कुछ खा लें या चाय पिएँ।''

''नहीं।'' वह सचमुच बेचैन थी। बोलते हुए वह हिल रही थी। अपने बालों पर हाथ फेर रही थी। उसके चेहरे पर तनाव, उदासी और थकान थी।

''चलिए।'' मैं बाहर निकल आया।

''कैसे हैं बाबू आनन्द स्वरूप?'' मैंने रास्ते में पूछा।

''ठीक नहीं हैं।'' वह मेरे साथ-साथ चल रही थी। ''बुखार आता-जाता रहता है। मेडिकल कालेज के बड़े डाक्टर को भी दिखाया। वैद्य हकीम भी देख गए। पर ठीक नहीं होता। उन्होंने भी अब जैसे जीने की इच्छा और आशा दोनों छोड़ दी हैं। बहुत कम बोलते हैं। मैंने उनसे कह दिया है कि अब उन्हें कचहरी आने की ज़रूरत नहीं है। कामिल सब देख ही रहा है। रोज़ इतनी दूर टैम्पो से आना और जाना, और यहाँ काम भी क्या है? शतरंज ही तो खेलते हैं। मैंने घर पर एक शतरंज ला दी है। अब वहीं कुछ लोग आ जाते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो यहाँ उनके साथ खेलते थे। वे घर पहुँचने लगे हैं। यह उनके लिए अच्छा है। आराम करते हैं, खेलते हैं। उन्हें भी मेरी बात समझ में आ गई है। पूरे दो महीने से कामिल ने ही सब सम्हाला हुआ है।''

''आप यहीं रुकिए।'' मैंने एक नीम के नीचे इशारा किया, ''मैं बुला कर लाता हूँ उसे।'' उसने सर हिला दिया।

कामिल अन्दर ही था। मुझे देखकर मुस्कुराया।

''आओ... अभी ख़ाली होता हूँ।''

''दाक्षायणी आई है। बाहर है।'' मैंने कहा।

कामिल के चेहरे पर एक क्षण के लिए तनाव आया फिर वह सहज हो गया।

''मैं आता हूँ।'' उसने टाइप करते हुए एक लड़के से कहा और मेरे साथ बाहर आ गया।

दाक्षायणी नीम के नीचे खड़ी नाखून चबा रही थी। उसकी निगाहें कचहरी के फाटक पर ही थीं। हमें देखकर वह हमारी ओर आई। कामिल उसका हाथ पकड़कर फिर नीम के नीचे ले आया।

''मैं चलता हूँ।'' मैंने दाक्षायणी से कहा।

''रुको।'' कामिल ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा। मैं रुक गया। दाक्षायणी के चेहरे पर एक क्षण के लिए असमंजस का भाव आया। मेरी उपस्थित की उसे सम्भवत: कल्पना नहीं थी। पर जिस तरह कामिल ने मुझे रोका था, मुझे रुकना ही था।

''मुझे आना पड़ा।'' बेचैनी से हिलते हुए वह बोल रही थी। ''कल मैंने बनारस

के एक पंडित को नाना की जन्मपत्री दिखाई थी। उसने बताया कि यह काला ज्वर बिना पूजन-हवन कराए नहीं उतर सकता। यह देह की समस्या नहीं, नक्षत्रों की समस्या है। पता नहीं क्यों, पर वे अशान्त और उग्र हैं। हवन भी पूर्णमासी को होना चाहिए। पूर्णमासी कल है। पंडित जी दो दिन बाद बनारस लौट जाएँगे और फिर सदा के लिए अज्ञातवास पर चले जाएँगे। मुझे कल हवन कराना है। उसका सारा सामान भी ख़रीदना है।'' उसने पर्स के अन्दर हाथ डालकर एक काग़ज़ निकाला, ''सब सामान लिखा है उसने। मैं सोच रही थी मैं ही सब सामान लेती हुई घर चली जाऊँगी। तुम्हें तो समय लगेगा।''

कामिल ने जेब में हाथ डाला। जितने रुपए थे सब दाक्षायणी को दे दिए। उसने रुपए लेकर पर्स में रख लिए।

''आज शाम तुम आना। जो सामान मुझे नहीं मिलेगा वह देख लेना। कहाँ, किस जगह हवन कराएँगे सब समझ लेना। पाँच ब्राह्मणों का भोजन भी होगा।''

कामिल कुछ नहीं बोला। कुछ क्षण दाक्षायणी चुप रही फिर बोली ''तुम्हारा घर पास ही तो है। कहो तो तुम्हारे पिता जी के दर्शन कर लूँ। बड़ों का आशीर्वाद लेने से जीवन सुखी रहता है।''

कामिल ने देखा उसे।

''तुम चाहो तो अपना काम करो। मुझे तो यह ले जाएँगे।'' उसने मेरी ओर इशारा किया।

''अभी वह सो रहे होंगे।'' कामिल बोला।

मैं असम्पृक्त सा इधर-उधर देख रहा था। दाक्षायणी ने एक क्षण मुझे देखा फिर एक काग़ज़ निकाला।

''यह घर पर आए थे। कोई काम है। मैंने कह दिया तुम सब कर दोगे। इनसे भी कल तक मिल लो।''

कामिल ने काग़ज़ ले लिया। कोई पता और कोई नाम लिखा था।

जाते हुए एक ख़ाली रिक्शे को दाक्षायणी ने रोका।

''मैं चलती हूँ।'' उसने कामिल से कहा। फिर मुझे देखा।

''मुझे क्षमा करिएगा, मैंने आपको कष्ट दिया। पर आप देख ही रहे हैं कितना ज़रूरी था। आप भी कल हवन में आइए। मेरे घर ही भोजन भी करिए।''

मैं मुस्कुराया, ''आपका घर है। जब चाहें आएँ।''

वह रिक्शे पर बैठी और चली गई। कामिल कुछ क्षण रिक्शे को देखता रहा फिर उसने मुझे देखा।

''क्या अभी स्कूल से ही आ रहे हो।''

''हाँ... बस खाऊँगा जाकर कुछ। चलते हो?''

''नहीं, बहुत काम है... सुना ही है तुमने। शाम को वहाँ भी जाना होगा।''

उसके चेहरे पर थकान और उदासी थी। उस काग़ज़ में क्या था कामिल ने मुझे नहीं बताया। मैंने भी नहीं पूछा। पर दस दिन बाद ही कामिल एक दिन रिक्शे पर ढेर सी मिट्टी, लोहे के पतले तार, खास तरह की प्लास्टर आफ पेरिस, रंग, ब्रश, लोहे की बहुत सी पतली कलम, छेनियाँ और मूर्ति बनाने की कुछ और भी चीज़ें ले आया।

होली के चार दिन बाद परीक्षाएँ थीं। मैं कामिल से इस बीच नहीं मिला था। कामिल भी धर्मस्थल, बाबू आनन्द स्वरूप, पिता और परीक्षा के बीच में फँसा रहा।

होली के दिन दोपहर को कामिल ने दरवाज़े से आवाज़ दी। तब तक सड़कों पर रंग चलना बन्द हो चुका था।

''चलो, आनन्द स्वरूप जी से होली मिल आते हैं।'' कामिल साइकिल पर था।

मैं सुबह घर में होली खेल चुका था। बल्कि उसके बाद नहा भी चुका था। मेरे चेहरे पर, हाथों पर बैंगनी और पीला रंग अभी तक लगा था।

''जल्दी आ जाएँगे।'' मेरी हिचकिचाहट देखकर कामिल बोला।

उसकी साइकिल पर बैठने के लिए मैं आगे आया।

''अपनी साइकिल ले लो। साथ-साथ चलते हैं। कहाँ खींचेंगे?''

मैं अन्दर से अपनी साइकिल ले आया। हवा थोड़ी कम थी। मैंने पम्प से कुछ हवा पहियों में भर ली।

''तुमने रंग नहीं खेला?'' मैंने पूछा।

''नहीं।''... कामिल बोला। फिर उसने कमीज की ऊपरी जेब दिखाई। उसमें रंग की कुछ पुड़ियाँ थीं।

''वहाँ खेलूँगा। तुम्हें भी खेलना होगा।''

''ज़्यादा भीगना मत। हल्की ठण्ड के इसी मौसम में धूप में भीगने पर बुखार सबसे पहले पकड़ता है। अगर परीक्षा से पहले बीमार पड़े तो पूरा साल बेकार जाएगा। वैसे क्या उसके बाद कचहरी आए बाबू आनन्द स्वरूप?'' मैंने साइकिल उसके बराबर लाते हुए पूछा।

''नहीं, फिर नहीं आए।''

कामिल ख़ुश था। मैंने उसे ख़ुश बहुत कम देखा था। बीच में वह हैंडिल से

दोनों हाथ हटाकर साइकिल चलाने लगता। जब ऐसा करता तो दोनों हाथों को सर के बालों में फेरता। यह ख़ुशी होली की थी, मौसम की, बाबू आनन्द स्वरूप की सत्ता से मुक्ति की, रंग खेलने की या दाक्षायणी से मिलने की—मैं समझ नहीं पा रहा था।

तिकोने पार्क के पहले मिठाई की बड़ी दुकान पर कामिल रुक गया। मैं भी।

''मिठाई ले लेते हैं कुछ। ख़ाली हाथ अच्छा नहीं लगेगा।''

कामिल साइकिल से उतर गया। दुकान में जाकर उसने मिठाई के दो डिब्बे लिए। उन्हें साइकिल के पीछे कैरियर में दबा दिया फिर साइकिल पर बैठ गया।

हम कुछ ही देर में बाबू आनन्द स्वरूप के घर पहुँच गए। घर के चारों ओर की सड़कें ख़ाली थीं। धूप में दरवाज़े का रंग चमक रहा था। अन्दर गहरा सन्नाटा था।

हमने साइकिलें दीवार के सहारे खड़ी कर दीं। कामिल ने डिब्बे हाथ में ले लिए। हम कमरे में आए।

बाबू आनन्द स्वरूप पंलग कर थोड़ा ऊपर की ओर खिसक कर अधलेटे थे। दाक्षायणी उनके बालों में तेल लगा रही थी।

मैंने कामिल के पीछे से देखा। कामिल को देख कर उसके चेहरे पर ख़ुशी की तेज़ चमक आ गई। बाबू आनन्द स्वरूप भी मुस्कुराए। कामिल ने दोनों डिब्बे पास के स्टूल पर रख दिए। एक दूसरी जेब से उसने सुनहरे रंग का गुलाल निकाला। एक चुटकी गुलाल उसने बाबू आनन्द स्वरूप के माथे पर लगाया फिर उनके पैर छू लिए। मुझे भी यही करना था। मैंने भी यही सब किया।

हम पलंग के पास दो कुर्सियों पर बैठ गए। दाक्षायणी ने उनके बालों में कंघी करके हथेलियों के तेल को अपने बालों से पोछ लिया।

''लेटेगें?'' उसने आनन्द स्वरूप से पूछा।

''हाँ।''

उसने सहारा दिया। बाबू आनन्द स्वरूप लेट गए।

''मैं हाथ धो लूँ।'' उसने कामिल से कहा।

कामिल ने डिब्बों की तरफ़ इशारा किया। उसने दोनों डिब्बे उठा लिए।

''आप आज खाना खाकर ही जाएँगे।'' उसने मुझसे कहा।

मैंने सहमति में सर हिला दिया। वह अन्दर चली गई।

कामिल ने इधर-उधर देखा फिर आनन्द स्वरूप से दाक्षायणी की माँ के बारे में पूछा।

वह नहीं थीं। एक बार फिर पति के साथ रहने की कोशिश करने गई हुईं

थीं। मैंने उस हल्के अन्धेरे में भी कामिल के चेहरे पर आश्वस्ति और शान्ति की लहर महसूस कर ली। बाबू आनन्द स्वरूप कचहरी के बारे में बातें करने लगे। कुछ वकीलों के बारे में पूछा उन्होंने । कुछ मुक़दमों के बारे में। पुरानी इमारतों को हटाकर बड़ी और नई इमारतें बनने का नक़्शा स्वीकृत हो गया था। उनके बारे में पूछा।

बातों के बीच में हमें अन्दर से दाक्षायणी के गुनगुनाने और नल से गिरती पानी की धार की आवाज़ें सुनाई दे रहीं थीं। फिर वे बन्द हो गईं। कुछ ही क्षण बाद दाक्षायणी ने अन्दर से कामिल को आवाज़ दी।

कामिल उठा और अन्दर चला गया।

बाबू आनन्द स्वरूप मुझसे बातें करने लगे। उन्होंने पहले मेरे पिता के बारे में पूछा फिर लेबर कोर्ट और ट्रेड यूनियन के कुछ मशहूर मुक़दमों की बातें करते हुए वह अचानक चुप हो गए।

अन्दर से कामिल और दाक्षायणी की हँसने और कुछ छीना झपटी की आवाज़ें आ रहीं थीं। कभी चुप्पी, कभी भिची आवाज़ें और कभी धीमी खिलखिलाहट थी। कोई गुदगुदाता हो जैसे किसी को! कोई मुँह से निकलती आवाज़ें रोकने की कोशिश करता हो जैसे! मैंने अन्दर कमरे की ओर देखा। वहाँ कुछ नहीं दिख रहा था। वे शायद और अन्दर वाले कमरे में थे। शायद वहाँ होली खेल रहे थे। मैंने वापस सर घुमा कर देखा। बाबू आनन्द स्वरूप काला चेहरा लिए, फटी आँखों से मुझे देख रहे थे। मैं चुपचाप उन्हें देखता रहा। मुझे लगा शायद वह संस्कृत का कोई श्लोक बोलना चाहते हैं, पर उनके होंठों के कोनों से अचानक थूक गिरने लगा। मैंने सोचा दाक्षायणी को आवाज़ दूँ पर अन्दर अब गहरा सन्नाटा था। पलंग के सिरहाने छोटा तौलिया रखा था। शायद उसी से वह थूक पोछते थे। मैं उठा और उनके होंठों को साफ़ कर दिया। साफ़ करके मैं फिर बैठ गया। वह उसी तरह मुझे देख रहे थे। मैंने एक दो बार इधर-उधर देखा फिर एक झटके से मैं उठ गया।

मैंने दरवाज़ा खोला और बाहर आ गया। बाहर आकर मैंने कुछ गहरी साँसे लीं फिर साइकिल उठायी और घर चला आया। रास्ते में मुझे याद आया कि दाक्षायणी से मैंने कहा था कि खाना खाऊँगा। पर इसके बाद ही मुझे बाबू आनन्द स्वरूप का काला चेहरा और फटी आँखें याद आईं। मैं खाने की बात भूल गया।

जैसा कि होना था, परीक्षा में मेरे बहुत अच्छे अंक आए। कामिल भी पास हो गया। उस दिन आनन्द स्वरूप के घर से लौटने के बाद मैं कामिल से नहीं मिला था। परीक्षाओं में लगा रहा। कामिल भी व्यस्त था। एक बार जूतों की पालिश और एक

बार स्याही की दवात लेने मैं उस इमारत की दुकानों पर भी गया पर कामिल से नहीं मिला।

परीक्षाएँ ख़त्म होते ही मैं आगे की प्रतियोगिताओं की तैयारी में लग गया। सुबह-शाम दोनों समय ट्यूशन और कोचिंग जाता। मेरी मेहनत का अच्छा परिणाम निकला। मैं देश के दक्षिणी हिस्से के सबसे प्रसिद्ध इंजीनियरिंग कालेज में दाखिला पा गया।

मेरे जाने के एक दिन पहले वाली रात कामिल ने मुझे दरवाज़े से आवाज़ दी। मैं बाहर आया।

''चलते हो कुछ देर!'' कामिल बोला, ''कुछ देर धर्मस्थल के सामने बैठते हैं।''

मैं कामिल के साथ आ गया। चलते हुए हम मुख्य द्वार की तोप के पास आ गए।

सामने की दुकानें बन्द हो चुकी थीं। उनके सामने रखी लकड़ी की बेंच दुकानों के मोटे लट्ठों या शटर के हुक के साथ जंजीर से बँधी थीं। हम एक बेंच पर बैठ गए।

सामने चाँदनी में नहाया हुआ धर्मस्थल था। तारों से भरा, साफ़, स्वच्छ आकाश था। तोप की नली पर एक चिड़िया बैठी थी। कामिल धीरे-धीरे बोल रहा था।

''उस दिन मैं जब कमरे में आया तो तुम चले आए थे। मैं लौट कर तुम्हारे घर आया। दरवाज़े पर दो बार धीमी आवाज़ भी दी, फिर चला गया। मुझे नहीं पता क्या हुआ उस दिन? क्यों आ गए तुम? मैंने तुम्हें दो बार रास्ते पर भी देखा। फिर मून ने बताया कि तुम कल बाहर जाओगे। आज मिलना ज़रूरी था। तुमसे बहुत सी बातें करनी थीं। समय निकलता चला गया। तुम्हें बहुत कुछ बताना भी था, पूछना भी था। अपने बारे में, दाक्षायणी के बारे में, इस धर्मस्थल के बारे में।''

कामिल ने सामने धर्मस्थल की अन्धेरे उजाले में डूबी इमारतों की ओर इशारा करते हुए कहा।

''जानते हो बिजन ... 8 जून, 1775 की तारीख़ इस देश में कोई नहीं जानता। किसी से पूछो कि क्या हुआ तो वह नहीं बता पाएगा। तुम भी नहीं बता पाओगे। पर उस दिन इस देश का इतिहास, इसका भाग्य, इसका चरित्र सब बदल गया। उस दिन दो साल पहले बने देश के पहले सुप्रीम कोर्ट में पहला सबसे बड़ा क्रिमिनल मुक़दमा शुरू हुआ। किंग वर्सेज़ महाराजा नन्द कुमार। जाली काग़ज़ात बनाने और धोखाधड़ी का। चीफ जस्टिस इम्पे था। तीन जज और थे। स्टीफेन सीजर लीमेस्टर, चेम्बर्स और हाइड। 20 लोगों की जूरी बनी थी। राजा की तरफ़ से वकील था डरहम

और नन्दकुमार का फ़ेरर। 8 दिनों के अन्दर पूरा मुक़दमा सुन लिया गया। नन्द कुमार को फाँसी की सज़ा सुना दी गई। 5 अगस्त को उसे फाँसी हो गई। देश में पहला ब्राह्मण फाँसी पर चढ़ाया गया। देश के इतिहास में यह पहली बार हुआ। उसकी फाँसी देखने हज़ारों लोग इकट्ठा हुए। जब फाँसी दी गई तो बहुतों ने 'ओ बाप रे...' कहते हुए नदी में कूद कर जान दे दी। उसी दिन अंग्रेज़ सरकार ने अपनी नई न्याय व्यवस्था के पहले धर्मस्थल की मजबूत नींव रख दी थी। पर यह पूरा मुक़दमा झूठे गवाहों, पक्षपात, जालसाजी और षडयन्त्रों का था। बाद में इम्पे और वारेन हेस्टिंग्स दोनों पर मुक़दमा चला। लेकिन 1775 में नए धर्मस्थल और नए धर्माधिकारियों ने जो रचा और नन्द कुमार की फाँसी के साथ हज़ारों ने जो देखा, वही फिर हमारा भविष्य बन गया। तब से ये धर्मस्थल कार्य कर रहे हैं। तुम्हें याद है न महताब जहाँगीर क्या कहते थे, मेरे बाबू क्या कहते हैं, धर्मशास्त्र क्या कहते हैं। संदेहों के बीच सत्य की खोज करना ही व्यवहार है, न्याय है, जीवन है। यह बहुत बड़ा सच है बिजन। कुछ भी अच्छा-बुरा, नैतिक-अनैतिक नहीं है। कुछ भी न्याय या अन्याय नहीं है। ये सब संदेह की डोर पर चलते रहते हैं और जब, जिसे, कुछ बहुत थोड़े लोग कह देते हैं वही न्याय हो जाता है, या फिर कोई भोंड़ा, विकृत, बहुत कम उमर का कोई सत्य हो जाता है।'' कामिल ने एक साँस ली। कुछ देर चुप रहा फिर बोला, ''तुम शायद यह सोचते होगे कि दो बार मुझे दाक्षायणी ने काग़ज़ देकर किसी से मिलने को कहा... मैंने तुम्हें कुछ नहीं बताया। मैंने सोचा पहले ख़ुद अपना रास्ता तय कर लूँ। तय कर लूँ कि जो मैं कर रहा हूँ वह क्या है। मैंने तभी इस धर्मस्थल के जन्म के बारे में पढ़ा। इसके इतिहास के बारे में पढ़ा। तब देखा कि इसकी नींव ही झूठ, धूर्तता और जालसाजी पर है। इसका जन्म ही इन सबको किसी छद्म में लपेट कर महत्त्व और सत्ता दिलाने के लिए हुआ है। तुम ज़रा लार्ड नार्थ का 1773 का वह एक्ट पढ़ो जिसने इन धर्मस्थलों को जन्म दिया। उसमें ही भेदभाव है। दो तरह के इन्सानों के बीच फ़र्क़ किया गया है। नन्द कुमार को भी एक साजिश के साथ फाँसी की सज़ा दी गई। इसमें गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के साथ सुप्रीम कोर्ट का चीफ जस्टिस इम्पे शामिल था। इस पहले सबसे बड़े धर्मस्थल के सबसे बड़े धर्माधिकारी ने ही अन्याय किया उसके साथ। और वह अन्याय भी करने के लिए रास्ते पहले बनाए गए। नीति, धर्म और कानून के साथ। तभी मैंने अपना रास्ता भी चुन लिया।'' कामिल ने एक गहरी साँस ली। ''दाक्षायणी ने जब पहला काग़ज़ दिया था मैं उसी दिन कर्बला गया था। वहाँ मैं अज़ीम बेग से मिला। उनके पुरखों की कर्बला है। 1857 की बगावत में अंग्रेज़ मेज़र ब्रूस ने उनके परिवार के किसी बेग को फाँसी दे कर पूरी जायदाद नीलाम कर दी। गिलिस बाज़ार और नया जनरलगंज में उनकी

दो कोठियाँ थीं। वे दस्तावेज़ अज़ीम बेग के पास हैं। पर उसमें एक पेंच रह गया। कर्बला को भी सरकारी क़ब्ज़े में दिखाया गया, पर उससे छेड़छाड़ नहीं की गई। अभी जब अज़ीम बेग कर्बला की टूटी दीवारों की मरम्मत कराने लगे, तो उन्हें सरकारी महकमों ने रोका कि वह यह नहीं कर सकते क्योंकि कर्बला सरकारी मिल्कियत में है। कर्बला के दस्तावेज़ यहाँ रिकार्ड रूम में हैं। उन्हीं जायदादों के दस्तावेज़ों के साथ। उन्होंने कई अर्जियाँ रिकार्ड रूम में दीं पर उनको उनकी नकल नहीं दी जा रही थी। वह चाहते थे कि मैं किसी भी तरह, चाहे चोरी से ही, उन दस्तावेज़ों की नकल ले लूँ, उसके फाइल नम्बर, तारीख़ वग़ैरह ले लूँ, जिससे वह इस कर्बला पर अपना पुश्तैनी हक़ दिखा सकें।

''मैंने अज़ीम बेग का काम कर दिया। रिकार्ड कीपर की चाभियों के साबुन पर निशान लेने का इन्तजाम किया फिर उसकी चाभी बनने का। वहाँ के चौकीदार और नीचे के क्लर्क से बात की। वह अक्सर रात को दस्तावेज़ों की नकल करने के लिए रुकता था। उसे चाभी देकर मैंने रिकार्ड की नकल करवायी। उसमें एक अर्ज़ी मिली जिसमें फाँसी के एक साल बाद इनके ख़ानदान में किसी आदमी ने कर्बला का स्टेटस पूछा था। उसे तब क्लीन चिट दी गई थी कि कर्बला पर कोई सरकारी मिल्कियत नहीं है। वे जो चाहें उसका करें।'' कामिल रुका, ''मुझे अज़ीम बेग ने अच्छे रुपए दिए। मैंने उससे घर में जाल डलवा लिया।''

''दूसरी बार भी ऐसा ही कुछ था। मुझे दो झूठे गवाह तैयार करने पड़े। सरकारी ठेके में ख़राब लालटेनों पर 'पास' की मोहर लगाने का मामला था। पास करने वाला इंस्पेक्टर कह रहा था मोहर उसकी है ही नहीं। नकली है। मेरे दो गवाह थे जो कह रहे थे कि मेरे सामने उन्होंने काग़ज़ पर चढ़ाकर मोहर हमें दी और हमने ख़ुद अपने हाथों से लगायी। वह लालटेन फिर दुबारा देखी गई और फिर पास की गई। मुझे फिर रुपए मिले। मैंने उस दिन बाबू की मूर्ति का सामान और अंगूठे के लिए थोड़ा सोना ख़रीदा। मैंने तभी पढ़ा था। नन्दकुमार के केस में भी यही सब हुआ था। मैंने धर्मशास्त्र भी पलटे, वहाँ भी झूठी गवाही, नकली दस्तावेज़ों का ज़िक्र है। मुझे एक क्षण के लिए भी नहीं लगा मैंने ग़लत किया है। यह तो होता ही आया था।

''जानते हो बिजन... इस धर्मस्थल की आत्मा, प्राण संसद है... संविधान है, कानून की हज़ारों किताबें हैं। विद्वान न्यायाधीशों के निर्णय हैं, जिनमें अपराध के विरुद्ध न्याय करने के, दण्ड देने के स्पष्ट आदेश हैं। पर यह सब एक कसैला धुआँ है, संदेह है। धर्मस्थल के आकाश को कभी देखो, बिल्कुल निरभ्र, चमकदार रातों में भी, तुम्हें इसके ऊपर एक सफ़ेद चादर दिखेगी। यह और कुछ नहीं वही शाश्वत संदेह हैं, जिसके नीचे यह धर्मस्थल किसी सत्य को खोजने की एक ऐसी नाट्यशाला

चलाता रहता है जहाँ चमकीले, विदूषकों जैसे कपड़े पहने पात्र आते-जाते हैं। जहाँ रटे-रटाए संवाद बोले जाते हैं। जहाँ रोज़ पर्दा उठता और गिरता है, जहाँ अन्धेरों उजालों में, परछाइयाँ और काया गड्ड-मड्ड होती रहती हैं। मैं इस नाट्यशाला का सूत्रधार बनूँगा बिजन। मैं ख़ुद इसके पात्रों की भूमिका तय करूँगा। मैं ही संवाद लिखूँगा। मैं इन संदेहों को इतना गहरा और गाढ़ा कर दूँगा कि कोई विकृत, अधूरा सत्य इसे भेद न पाए।''

किसी मिल का हूटर बजा। रात पाली शुरू हो रही थी। मुझे बहुत सामान बाँधना था।

''चलो।'' कामिल ने मेरे कँधे पर हाथ रखा, ''तुमसे बात करके मन बहुत हल्का हो गया।''

मैंने कामिल का हाथ पकड़ लिया। उसकी हथेली दबायी। उसका हाथ पकड़े हुए मैं अपने घर तक आया।

''कल स्टेशन भी आना चाहता था पर वहाँ तुम्हारे परिवार के सब लोग होंगे, इसलिए नहीं आऊँगा। यहीं तुमको विदा देता हूँ।'' कामिले ने मुझे गले लगाया। फिर अलग हो गया।

''अब इसके बाद?''

''बस इस कालेज में पाँच साल और शायद फिर विदेश कुछ साल... और तुम? तुम क्या करोगे?''

''मैं...'' कामिल धीरे से हँसा, ''मेरा जीवन तो अब यही है।'' उसने धर्मस्थल की ओर इशारा किया। फिर मेरी हथेली दबायी। उसकी आँखों में पानी था, ''अगर चिट्ठी लिखूँ तो जवाब दोगे न? वैसे चाहो तो न भी दो।''

''हॉस्टल में कमरा मिल जाए, फिर पता यहाँ किसी से भी पूछ लेना। वैसे जल्दी ही एक बार आना पड़ेगा। पूरा सामान नहीं ले जा रहा हूँ।''

कामिल कुछ कहना चाहता था पर चुप रह गया। मुझे लगा वह दाक्षायणी के बारे में कोई बात बताना चाहता है। शायद उस होली के दिन के बारे में, जब मैं चला आया था। पर वह एक झटके से घूमा और चला गया।

गेट पर खड़ा मैं उसे देखता रहा। धर्मस्थल के ठीक ऊपर पूरा चाँद आ गया था। उसकी रोशनी में ढलवाँ छतें, जर्जर दीवारें,...तोप और पेड़ों पर ऊँघते बन्दर दिख रहे थे। सफ़ेदी में डूबी ख़ाली, लम्बी सड़क पर कामिल धीरे-धीरे जाता हुआ दिख रहा था। नितान्त एकाकी... जैसे सत्य की खोज करने वाले होते हैं।

दो

उस दिन कामिल ने विदा लेते समय मुझसे पूछा था, ''क्या पत्र लिखूँ तो जवाब दोगे ?''

मैं वापस शहर नहीं आ पाया। पहली बार एक भव्य और विशाल शिक्षा संस्थान देखा। हॉस्टल का जीवन देखा। अनुशासन और ज्ञान का अथाह भंडार देखा। गुरु गम्भीर, विद्वान अध्यापक देखे। असंख्य पुस्तकों वाली लाइब्रेरी देखी। उस छोटे से शहर के सरकारी स्कूल से, उसकी तंग गलियों, धर्मस्थल के चारों ओर की जड़ और संकीर्ण ज़िन्दगी से निकलकर, अचानक मैं एक विराट जगत में आ गया था।

शुरू के कुछ महीने मुझे स्थिर होने में लग गए। फिर अचानक पिता का तबादला हो गया। शायद उन्होंने स्वयं ही कोशिश करके कालेज के पास वाले शहर में करवा लिया। उस शहर से मेरा कोई सम्पर्क नहीं बचा सिवाय कामिल के।

कामिल मुझको पत्र लिखता रहा। मैं भी। कामिल के पत्र मुझे कभी, कहीं मिल जाते। गर्मियों में, सर्दियों में, बरसातों में। गर्मियों में मैं हॉस्टल की खुली छत पर चाँद की रोशनी में उन्हें पढ़ता, सर्दियों में ख़ाली दोपहरी के एकान्त में किसी चमकदार धूप के टुकड़े में बैठकर पढ़ता, बरसातों में अपने कमरे की खिड़की की सलाखों से बारिश देखते हुए पढ़ता। जब भी उसका पत्र आता मैं कई बार पढ़ता। मैं कभी नहीं चाहता कि उस समय कोई मेरे पास भी हो। मैं कभी नहीं चाहता था कि मेरे और कामिल के बीच कभी कोई आए। उस दिन आनन्द स्वरूप के घर शायद यही हुआ था। मैंने समझ लिया था कि मेरे और कामिल के बीच दाक्षायणी आ गई है। मैं चला आया था।

कामिल पत्रों में अपने जीवन के बारे में लिखता रहता। धर्मस्थल के जीवन के बारे में लिखता रहता। पिता के बारे में, मूर्ति के बारे में, मून के बारे में लिखता रहता। उसके पत्रों में कभी मनुष्य के सुख-दुख के कारणों की तलाश होती, कभी कोई कठिन प्रश्न, कभी दार्शनिक जटिल विश्लेषण होता। कामिल उस जीवन में धँसता जा रहा था जो समाज, राज्य, कानून तैयार करके मनुष्य को देते हैं। जिसके

गूढ़ रहस्यों को दार्शनिक समझने की कोशिश करते हैं। जिसका इतिवृत्त इतिहास लिखता है, जिसकी व्याख्याएँ साहित्य करता है। कामिल मुझसे पूछता, 'तुम बताओ बिजन संदेहों के बीच जो सत्य है उसे निरन्तर ढूँढना होगा या वह स्वयं ही किसी दिन अपनी शक्ति और सत्ता के साथ प्रकट हो जाएगा? संदेह न हों तो क्या कोई इकतरफ़ा, एकमात्र सीधा सरल सत्य हो सकता है? बताओ मृत्यु के सिवाय पूरी दुनिया के लिए कोई एक ऐसा सत्य होता है जो हर देश, धर्म, जाति, भूगोल का भी सत्य हो? नहीं न! तो फिर क्या सचमुच कोई सार्वकालिक, सार्वभौमिक सत्य होता भी है? क्या सत्य को ढूँढने की मनुष्य की यह यात्रा कभी ख़त्म भी होती है?'

मैं कामिल को कोई उत्तर नहीं दे पाता। मैं ऐसे जगत में था जहाँ कहीं कोई संदेह नहीं था। विज्ञान की सत्यापित की हुई धारणाएँ थीं, ब्रह्माण्ड के हर क्षण का हिसाब था। सब कुछ सिद्ध, सुनिश्चित, प्रयोगशालाओं में तथ्यों के साथ, आँकड़ों के साथ सिद्ध किया जा चुका था। एक सत्य के आधार पर दूसरा, उसके आधार पर तीसरा बड़ा सत्य! मनुष्य अनवरत एक से एक बड़े सत्यों को मुट्ठी में कर रहा था। कहाँ क्या फ़र्क़ था कामिल के प्रश्नों और मेरे जीवन में? वहाँ सब कुछ संदेह में था। यहाँ सब निसंदेह था। शायद इसीलिए कि कामिल मनुष्य के अन्तर्जगत की बात करता था, उसमें जीता था और मैं मनुष्य के भौतिक जगत की, नक्षत्रों की, रसायन, पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं की।'

विदेश जाने से पहले सन् 72 से 77 तक के पाँच वर्षों में मुझे कामिल के कुल तेईस पत्र मिले। मैं जब भी अकेला होता उन पत्रों को पढ़ता। कामिल ने एक पत्र में लिखा—

> ''अन्धेरा होने से पहले एक स्लेटी रंग उतरता है। दुख और उदासी के बीच जीवन की निर्लिप्तता और निस्सारता का आलाप लेता हुआ। इस रंग में सड़कों के मोड़, ऊँची छतों की मुँडेरें, घरों की बिना प्लास्टर की ऊबड़-खाबड़ दीवारें और छज्जों पर लटके उदास बदन होते हैं। यह रंग कुछ ही देर रहता है। उतनी ही देर जितनी पलक झपकने में लगती है, जितनी जीवन से मृत्य की दूरी तय करने में लगती है। फिर यह रंग धीरे-धीरे एक कालिख में उतरता जाता है। रंगों का यह संधि-स्थल वास्तव में चेतना और विस्मृति का संधि-स्थल होता है। बोध और अज्ञान का होता है। जीवन और मरण का होता है। मैं तुम्हें इस स्लेटी रंग में बैठ कर रोज़ याद करता हूँ। तुम्हारे कमरे में भी यह रंग उतरता होगा। न उतरता हो तो बताना। मैं किसी दूसरे रंग की बात

करूँगा, उसकी, जो तुम्हारे कमरे में होता हो।
एक दूसरे पत्र में कामिल ने लिखा—
तुम जीवन में कभी सार्थकता का अनुभव नहीं करोगे बिजन यदि किसी से घृणा नहीं करोगे। घृणा का अर्थ है किसी न किसी के प्रति कठोर पक्षधरता, प्रतिबद्धता। तुम सचमुच कभी किसी पक्ष के साथ दृढ़ता से दिख सकते हो, तुम सचमुच किसी निष्ठा से अपनी आत्मा को सींचते हो, तुम सचमुच किसी स्वप्न के साथ जीवित हो, इसका प्रत्यक्ष और असंदिग्ध प्रमाण है कि तुम किसी अन्य से कितनी घृणा करते हो। तटस्थ, निर्लिप्त या स्थितप्रज्ञ दिखने वाला मनुष्य अन्धेरे उपासना गृहों की जलती अगरबत्तियों की ज़रूरत है, जीवित, असंतोष से धधकती किसी आत्मा की नहीं।

इन पत्रों में कामिल का जीवन रखा होता। उसका ही क्यों, बाबू आनन्द स्वरूप का, दाक्षायणी का, उसके पिता का, धर्मस्थल का जीवन भी मेरे सामने आ जाता। मैं जैसे सब कुछ साक्षात, सामने घटित होते हुए देखने लगता। जैसे कभी उससे अलग हुआ ही नहीं ... कभी कहीं दूर गया ही नहीं।

होली की दोपहर के बाद से आनन्द स्वरूप ने कामिल से बात करना बन्द कर दिया था। जब उसे देखते तो आँख बन्द कर लेते या मुँह घुमा लेते। कामिल ने दाक्षायणी को यह बताया था।

"यूँ ही होगा। माँ अब नहीं रहती हैं इसलिए।"

दाक्षायणी की माँ वापस अपने पति के साथ रहने लगी थी। दाक्षायणी ने उसका सिलाई स्कूल सँभाल लिया था। अपनी पढ़ाई भी करती थी। बाबू आनन्द स्वरूप की पूरी देखभाल करती थी। कचहरी के काम का पूरा हिसाब रखती थी।

एक दिन जब कामिल आनन्द स्वरूप के पास से गुज़र रहा था, उन्होंने अचानक उछलकर उसकी हथेली पकड़ ली। कामिल एक झटके से रुक गया। उसे लगा जैसे लोहे की जकड़ में उसकी ऊँगलियाँ आ गई हैं। उसने देखा। बाबू आनन्द स्वरूप उसे घूर रहे थे। उनकी बूढ़ी कमज़ोर उँगलियाँ उसकी हथेली को कसती चली जा रहीं थीं। जैसे पीस देंगी उसे। कामिल उनके पास पलंग पर बैठ गया। उन्होंने उसका हाथ नहीं छोड़ा।

"तुमने शान्तिपर्व पढ़ा है क्या?" उन्होंने काँपती आवाज़ में पूछा।

कामिल भौंचक्का होकर उन्हें देखता रहा।

''बताओ...पढ़ा है?''

''क्यों?''

''उसी में तो वह सब लिखा है जो तुम कर रहे हो।''

''मैं क्या कर रहा हूँ? क्या लिखा है?'' कामिल ने उँगलियाँ छुड़ाने की कोशिश की।

''पहले बताओ पढ़ा है?''

''हाँ।''

वह हँसे, ''मैं बहुत सोचता रहा कि ऐसा क्यों हुआ? फिर याद आई उसकी बात। मैं समझ गया तुमने वहीं से सीखा है। तुम ऐसे तो नहीं थे। क्यों तुम मेरे काम को, फिर इस लड़की को, इस घर को हड़प रहे हो?''

''कैसी बातें कर रहे हैं आप?''

''महताब जहाँगीर बताते थे, शान्ति पर्व में लिखा है कि एक व्यक्ति को अपने शत्रु को कंधे पर भी ढोना चाहिए पर काम हो जाने पर मिट्टी के बरतन के समान उसे पत्थर पर पटक कर मार डालना चाहिए। देखना ज़रा एक सौ चालीसवाँ सर्ग, सत्रहवाँ अठारहवाँ श्लोक। भारद्वाज ने तो राजधर्म में बताया है कि केकड़ा अपने माँ बाप को खा जाता है इसलिए अगर राजकुमार अपने पिता को प्यार न करे तो राजा को उसे मार डालना चाहिए। मैं तुम्हे समझ नहीं पाया। महताब जहाँगीर होते तो तुम्हें देखते ही समझ जाते। तभी तुम्हें ख़त्म कर देते। तुम उसे छोड़ दो।'' अचानक कामिल की उँगलियाँ छोड़कर आनन्द स्वरूप ने दोनों हाथ जोड़ लिए।

''किसे?''

''मेरी बच्ची को।''

''फिर कौन देखेगा आपका काम, यह घर, आपको और उसे भी?''

''मैं अपनी बेटी को वापस बुला लूँगा। दामाद के भी हाथ जोड़ लूँगा कि वे दोनों यहीं, अपनी बेटी के साथ रहें। तुम बदले में कचहरी का सब काम ले जाओ। कुछ भी पैसे मत दो। सारे टाइपराइटर तुम्हारे...सब तुम्हारा।''

तभी अन्दर के कमरे से दाक्षायणी तेज़ी से आई।

''कैसी बातें करते हैं आप?'' उसने कामिल का हाथ पकड़कर उसे पलंग से उठा लिया, ''यह न हों तो मैं एक दिन नहीं जी पाऊँ। शायद आप भी।''

''तो फिर तुम दोनों शादी कर लो।'' आनन्द स्वरूप ने फिर हाथ जोड़े। इस बार वह दाक्षायणी और कामिल दोनों के हाथ जोड़ रहे थे, ''मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। उसके बाद तुम्हारे कर्म, तुम्हारा भाग्य।''

''आप बन्द करिए यह सब। और सुन लीजिए ध्यान से। मुझे नहीं रहना है उस आदमी के साथ। जानते हैं आप कुछ ? याद है आपको जब मैं छोटी थी और वह आता था तो मुझे सिनेमा दिखाने ले जाता था। आप दोनों ख़ुशी से मुझे उसके साथ भेजते थे कि शायद बेटी के प्यार के कारण वह अपनी पत्नी से सम्बन्ध सुधार लेगा... ख़ुद अच्छा इन्सान बन जाएगा। पर ऐसा कुछ नहीं था। वह एक ही टिकट ख़रीदता था। सीट पर मुझे अपनी गोद में बैठाता था।'' दाक्षायणी हाँफने लगी। कुछ देर चुप रहकर उसने साँस ली फिर थकी हुई धीमी आवाज़ में बोली, ''और यह भी सुन लीजिए। आख़िरी बार। मैं आपको छोड़ कर कहीं नहीं जाने वाली। मैंने आपके लिए ख़ुद नया कुर्ता पाजामा सिला है। अभी आपका बदन पोछकर पहनाऊँगी।'' फिर झुकी वह। आनन्द स्वरूप के माथे पर हाथ रखकर बहुत धीरे से फुसफुसायी, ''सब अच्छा है... सब ठीक है। मत सोचिएं कुछ।''

बाबू आनन्द स्वरूप कुछ देर अपनी आँखों के बिल्कुल पास उसके चेहरे को देखते रहे फिर धीरे से आँखें बन्द कर ली उन्होंने।

कामिल के दूसरे भाई ने भी घर छोड़ दिया। कामिल अब अकेला पिता के साथ रह गया।

बिजली विभाग ने अपनी एक कालोनी बनाई। उसके भाई को भी उसमें घर मिल गया। वह वहाँ चला गया। पर अपने कमरे में उसने एक ताला डाल दिया। कभी-कभी वह घर आता। अपने कमरे का ताला खोलकर कुछ देर उसमें बैठता। इधर-उधर चीज़ें पलटता और चला जाता। कई बार वह थैला या झोला ऐसा कुछ लाता। उसमें कुछ भरा होता। लौटता तो थैला ख़ाली रहता। कभी वह पिता के लिए खुरचन या कोई कपड़ा ले आता। कभी जाते जाते उनके कमरे में चुपचाप झाँक लेता। वह दिखते तो दरवाज़े से ही पूछता।

''कैसे हो ?''

''ठीक हूँ।''

''फिर आऊँगा।''

इतना बोलकर वह चला जाता।

पिता के अकेले रह जाने के कारण कामिल को अब जल्दी घर लौटना पड़ता। घर के काम के लिए उसने एक विधवा औरत को रख लिया था। वह दो समय का खाना बना देती। पानी भर जाती। बरतन साफ़ करती। कपड़े धो देती। कभी वह नहीं आती तो कामिल नीचे किसी हलवाई की दुकान से कचौड़ी या खाने की

पूरी थाली ले आता। कभी ख़ुद ही कुछ बना लेता। सोने से पहले पिता को चाय बनाकर दे देता। कुछ थरमस में भरकर रात के लिए रख देता। ठण्डी हो जाती तो वह ख़ुद ही गर्म कर लेते। वह कभी कहते या कामिल ख़ुद ही ज़िद करके उनके लम्बे, सूखे बालों में तेल लगा कर कंघी कर देता। सर्दियों में लिटाकर, फटी खाल पर कड़वे तेल की मालिश कर देता।

रात को कामिल अब घर पर ही रहता। पिता के पास उसका बैठना बढ़ गया था। उन्हें मूर्ति पर काम करते हुए देखता। वह मिट्टी से सने हाथों से कुछ गढ़ते रहते। मूर्ति की अभी कोई शक्ल नहीं बनी थी। बस एक लोंदा भर था। न स्त्री न पुरुष। कभी बुरी तरह थक जाते तो दीवार पर यूँ ही सर टिका कर सो जाते। कभी कामिल देखता वह पूरी रात ग़ायब रहते। सुबह पूछता तो वह धीरे से कहते विराट की शरण में गया था। कभी वह पूरे पसीने में भीग जाते। कामिल उनके हाथ की मिट्टी साफ़ करके उन्हें लिटा देता। उनका पसीना पोछता। उनके तलुवों को घिसता। कुछ देर वह गहरी साँस लेते फिर उठकर बैठ जाते। उनके चेहरे की चमक लौटने लगती।

''ज़रा एक तम्बाकू तो बनाओ।''

कामिल चौकी पर रखी उनकी चुनौटी उठा लेता। तम्बाकू में मिलाने वाले दूसरे सामान भी। हथेली पर चूना, तम्बाकू की पत्ती, पिसी लौंग, और इलायची रगड़कर एक चुटकी बनाता और उन्हें दे देता।

''एक चुटकी तुम भी खाओ न'' वह चमकती आँखों से कहते।

कामिल हँस देता, ''दुनिया में कौन बाप ऐसा होगा जो बेटों को यह सिखाता हो।''

''हम हैं। हमारे बाप ने भी हमें सिखाया था।''

''ज़्यादा खाने लगे हो। डाक्टर कहते हैं ज़हर है।''

''चूतिया हैं साले...। किसी ने खाकर देखा है।''

''एक दिन दिमाग़ की नस तड़केगी तब पता लगेगा कौन क्या है।''

एक रात खाना खाते हुए वह कामिल से बोले।

''घर में बस बाप बेटे अकेले हैं। अच्छा नहीं लगता। शादी कर लो।''

''किससे?''

''किसी से भी।''

''तो रहने दो।''

''तुम्हारी किसी से मुलाक़ात नहीं है?''

''है तो।'' कामिल कुछ क्षण रुक कर बोला। मुँह को ले जाता हुआ कौर रोककर उन्होंने कामिल को देखा। वह चुपचाप सर झुकाए खा रहा था।

''खाओ मेरी कसम।''

''इसमें कसम की क्या बात है?''

''क्या नाम है?''

''दाक्षायणी।''

''क्या.. ? फिर बोलो।''

''दाक्षायणी।''

''अरे...यह तो साक्षात माँ का नाम है। जगत्जननी का।'' उन्होंने हाथ का कौर थाली में छोड़कर दोनों हाथ जोड़े। सर झुकाया, ''मैं भी कितना मूर्ख हूँ। इतने महीनों से माँ की मूर्ति बनाने में लगा हूँ। कुछ भी स्पष्ट नहीं होता। कुछ भी नहीं दिखता। कैसे दिखता? कैसे रचता? साक्षात माँ ही जब सामने हो तब उसके चरणों में न जाकर कल्पना में जी रहा हूँ। फिर माँ तो नाराज़ होगी ही। चलो।'' खाना छोडकर वह उठ गए। कामिल ने देखा उन्हें। उनके चेहरे पर गहरी करुणा और दीनता थी।

''कहाँ?''

''माँ के पास। अब किस बात की देर करनी।''

''अभी आधी रात है।'' कामिल ने उनका हाथ पकड़ लिया, ''खाना खा लो फिर मिलाऊँगा।''

''सच?'' उन्होंने अविश्वास से पूछा।

''हाँ।''

वह फिर बैठ गए। चुपचाप रखा हुआ कौर उठाकर चबाने लगे। कुछ देर तक सर झुकाए चबाते हुए फिर खाना रोकर कामिल को देखा उन्होंने, ''यह समझ में ही नहीं आ रहा कि कुँडल गिर गया तो पार्वती को कैसे पता लगा? सोचो ज़रा, वह तो आत्मविस्मृत है। नृत्य में लीन है। दोनों नेत्र इस जगत से परे एक परमानन्द में अर्धनिमीलित हैं। देह क्या, हर अंग समाधिस्थ है। फिर कैसे इतनी छोटी सी बात उसे पता लगी?'' फिर वह एकदम से उछल कर खड़े हो गए, ''अरे... सोचा ही नहीं। अगर पार्वती का तीसरा नेत्र बनाऊँ तो? उसी से वह गिरा हुआ कुण्डल देखती है... उसी से नृत्यलीन रहते हुए भी पाँव से कुण्डल पहनती है। और यह तीसरा नेत्र भी उलटा होगा। पूरे जगत की प्रत्यक्षता को अस्वीकार करने वाला। रचनात्मकता की नई सत्ता, नई परिभाषा गढ़ता हुआ, मूर्तिकला में एक नया फार्म, नया प्रयोग।'' वह खाना छोड़ कर तेज़ी के साथ कमरे से बाहर निकल गए। बाहर खुली जगह पर रखी बाल्टी के पानी से हाथ धोए उन्होंने फिर कमरे के कोने में रखी मिट्टी के ढेर में दोनों हाथ डालकर उँगलियों से मिट्टी सानने लगे।

''देखा तुमने ...माँ का नाम लिया और अन्धकार नष्ट हो गया।''

कामिल चुपचाप उदास आँखों से उन्हें देख रहा था। उनके गले की हड्डियाँ निकल आईं थीं। रीढ के दोनों तरफ़ कंधे झुक गए थे। तम्बाकू खाने से हर वक़्त लार बहती थी। दाँत काले हो गए थे। एक लम्बी गहरी नींद की प्रतीक्षा में आँखों में गहरी थकान, निसंगता बनी रहती थी। कई बार बाहर नंगे पाँव चलते रहने से एड़ियों की खाल फट गई थी।

अचानक मिट्टी सानना छोड़कर रुके वह। कामिल को देखा उन्होंने।

''कब ले चलोगे?'' उन्होंने कामिल से पूछा।

''कहाँ?''

''माँ के दर्शन कराने।''

कामिल ने एक क्षण देखा उन्हें फिर धीरे से हँसा।

''पहले माँ से तो पूछ लूँ।''

कामिल का जीवन धर्मस्थल, बाबू आनन्द स्वरूप और अपने पिता के बीच सीमित हो गया। उसने बी.ए.के बाद अब एम.ए. में दाखिला ले लिया था।

बाबू आनन्द स्वरूप से मिलने कचहरी के लोग आते रहते। कुछ पुराने वकील, कुछ साथी टाइपिस्ट, कुछ मुंशी, पेशकार, दफ्तरों के बड़े बाबू।

दाक्षायणी उनको चाय पिलाती फिर पूछती।

''कचहरी में तो बहुत तरह के काम होते होंगे। कुछ बताइए न। चार टाइपराइटर रखकर जीवन भर टाइप तो नहीं करना है।''

मुहल्ले के या दूर के रिश्तेदारों से कहती।

''कचहरी में कोई भी काम हो बताइएगा। हो जाएगा।''

धर्मस्थल में अब बहुत भीड़ होने लगी थी। हाथों की पोटली में खाना लिए, कन्धों पर छोटे बच्चों के बैठाए, मीलों दूर से आदमी औरतें मुक़दमों में आते। उनकी आँखों के कोनों की सिकुड़नों में सफ़ेद मैल होता। चेहरों पर गहरी थकान के साथ बदन को घसीटते हुए वे इस इमारत से उस इमारत दौड़ते रहते। काले कोट वालों के पाँव छूते। अदालतों के दरवाज़ों के बाहर बैठे भय और विस्मय से अन्दर झाँकते रहते। अर्दली की पुकार, पेशकार के काग़ज़ों, तारीख़ों, सुनवाई के बीच हाथों में काग़ज़ लिए, बस्तों के बीच के सँकरे रास्तों पर फेना बहाते, पसीना पोछते, बदबूदार पानी के ढेर, थूक, पीक, कूड़े के ढेरों पर लोटते कुत्तों के बीच लिथड़ते हुए, वे एक अदालत से दूसरी अदालत, एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर, न्याय को ढूँढते भागते। कहाँ है न्याय? कब मिलेगा? किसकी मुट्ठियों में बन्द है? न्याय की प्रतीक्षा करते

हुए धर्मस्थल की चौकोर छतों वाली इमारतों के गलियारों पर पड़े तख्त पर लेटे, हाँफते उनके शरीर धीरे-धीरे सूखते जाते। लोअर कोर्ट, सेशन कोर्ट, हाइकोर्ट...कानून की एक धारा से दूसरी धारा, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, एक जन्म से दूसरा जन्म। जन्म मृत्य के अन्तहीन चक्र की तरह चलता न्याय चक्र। शान्त...धीरे-धीरे रौंदता हुआ, यह एक निर्मम माया जगत था जिसमें महानताओं, नैतिकता, धर्म, राजा, राज्य, दण्ड, कानून और न्याय के टीलों पर, उलटे लटके चमगादड़ों की तरह झूलती मृगतृष्णाओं के लिए धर्मस्थल छोटा पड़ने लगा था। पुरानी इमारतों को गिरा कर कई मंज़िला ऊँची इमारतें बनाने की बात शुरू हो गई थी।

एक दिन बाबू आनन्द स्वरूप से मिलने आए एक बूढ़े वकील ने दाक्षायणी से कहा, ''अब टाइपिंग में कुछ नहीं बचा है। बहुत लोग हैं। सैकड़ों बेरोज़गार लड़के यही करने लगे हैं। कामिल को दूसरे काम करने चाहिए।''

''बताइए न कुछ।'' दाक्षायणी ने पूछा।

''एक काम है।'' उसने दाक्षायणी को अलग ले जाकर देर तक कुछ बताया।

रात को कामिल आया तो दाक्षायणी ने चाय का गिलास देकर कहा।

''कचहरी में रोज़ क़ैदियों से भरी गाड़ियाँ आती हैं। उन सबके घर वाले कचहरी आते हैं। उन्हें सिगरेट, खाना, कपड़े, रुपए देते हैं। क़ैदियों को जेल के अन्दर भी रुपए चाहिए होते हैं। वहाँ भी उन्हें सब मिल जाता है। उनकी ज़रूरतें पूरी होती हैं। तुम यह क्यों नहीं करते?''

''क्या?'' कामिल ने दाक्षायणी को आश्चर्य से देखा।

दाक्षायणी कामिल के पास बैठ गई। उसकी एक हथेली को अपने हाथों में ले लिया।

''मैंने पता किया है। बहुत आसान है। तुम क़ैदियों को, उनके घरवालों को ब्याज पर रुपए दो। सैकड़ों क़ैदी हैं। उनके घर वाले ब्याज चुकाने को तैयार हैं। बाज़ार से बीस गुना ज़्यादा ब्याज भी। दस रुपए पर दो रुपया महीना ब्याज। तुम तो जानते हो सबको। पुलिस, वकील, दरोगा, जेल। ज़्यादा कुछ नहीं करना है। शुरू में बस लोगों को पता लगना चाहिए कि तुम यह करते हो। सब अपने आप आने लगेंगे। मैंने पता किया है। ज़्यादा क़ैदी गाँव के झगड़ों के होते हैं। उनके पास ज़मीन होती है। वे सब तुम्हें ब्याज दे सकते हैं। क़र्ज़ चुका सकते हैं।''

''हमें क्या ज़रूरत है?'' कामिल बोला, ''सिलाई स्कूल भी है। मैं और टाइपराइटर बढ़ा सकता हूँ। फिर इतना पैसा क्या करोगी?''

''वह तुम मुझ पर छोड़ दो।'' दाक्षायणी ने कामिल के हाथ से ख़ाली गिलास ले लिया। ''अब तुम्हें भी टाइपराइटर पर बैठने की क्या ज़रूरत है? क्या हम जीवन

ऐसे ही बिता देंगे ? और फिर कोई भी लड़का यह काम कर सकता है। जैसे तुमने शुरू किया था नाना के साथ। अब तुम किसी को रख लो। वह सब भी चलता रहेगा। पहिया एक बार घूम जाए तो अपनी गति से चलता रहता है।''

कामिल कुछ नहीं बोला।

''मेरे पास कुछ रुपए हैं। क़रीब दो हज़ार। तुम इनसे काम शुरू कर सकते हो। क़ैदियों के वकीलों तक यह बात पहुँचानी है बस। उनके घर वाले ख़ुद तुम्हारे पास आएँगे। मैं सब हिसाब रख लूँगी। किसको कितना दिया, क्या ब्याज है, कब क्या मिला।''

दाक्षायणी कामिल से बिल्कुल चिपक कर बैठ गई।

''हमें अभी बहुत कुछ करना है। आने वाला समय किसने देखा है और पैसे से ज़्यादा चंचल क्या है ? तुम्हें नहीं पता पर पूरी कचहरी में सब तुम्हारा नाम जानते हैं। पहचानते हैं। लोग कहते हैं कामिल कुछ भी कर सकता है। कचहरी के एक-एक पत्थर को, कोने को पहचानता है। मैं भी यहाँ सबसे कहती हूँ। कोई काम हो कचहरी में बताइएगा। कितना भी कठिन, हो जाएगा। तुम उन चार टाइपराइटर्स में जीवन नष्ट मत करो।''

दाक्षायणी ने बाँह फैला कर कामिल को घेरे में ले लिया। उसका चेहरा बिल्कुल कामिल के सामने था। खुले बाल, गहरी काली आँखें ...चमकदार साँवला रंग। उसने अपनी बाँहों को कसा फिर मुस्कुरायी।

''मैं यूँ ही मरने के लिए पैदा नहीं हुई हूँ।'' कामिल के होंठ चूमे उसने। कामिल ने उसकी आँखों को देखा। आनन्द से निमीलित। बाबू यही दो आँखें बनाना चाहते हैं। और तीसरी भी, जो सृष्टि चक्र का नृत्य करते हुए भी, गिरे हुए कुण्डल को देख लेती है। उसे पाँव के अंगूठे से वापस पहन लेती है। कामिल ने दाक्षायणी के माथे के बीच अपना अँगूठा रख दिया। उसे दबाया, दबाता गया। दाक्षायणी ने झटके से अपना सर हटा लिया। उसने आश्चर्य से कामिल को देखा।

''जो मैं नहीं देख पाता वह तुम देख लेती हो। यहाँ शायद एक तीसरी आँख भी है।'' कामिल ने उसके माथे को चूम लिया।

''हाँ!'' दाक्षायणी खिलखिलायी, ''तभी तो तुम्हें इस जनम में ढूँढ लिया है।'' उसने अपना सर कामिल के सीने से टिका दिया। कामिल ने अपना चेहरा उसके बालों में रख दिया। वह साँझ की आरती करके आई थी। उसके बालों में कपूर और अगरू की गंध थी। केशों के रूखेपन की गंध थी। देह के कच्चे आटे की लोई की गंध थी। देर तक वह यूँ ही बैठे रहे। फिर दाक्षायणी ने चेहरा उठाया।

''मेरे स्कूल में एक औरत मेरे साथ सिलाई सिखाती है। उसका छोटा भाई

काम ढूँढ रहा है आज कल। मैंने कहा, मैं तुमसे बात करूँगी। मैंने देखा है उसे। वह होशियार और तेज़ है। तुम उसे अपने साथ रख लो। टाइप मशीनों का काम वह समझ लेगा। तुम ख़ाली होकर दूसरे बड़े काम कर सकते हो।''

''क्या नाम है?'' कामिल ने पूछा।

''मादल...''

मून ने कचहरी की नीलामी में जेल के सामने वाले दरवाज़े के भोजनालय का ठेका ले लिया था। लायर्स एसोसिएशन वाले कमरे के टाइपराइटरों पर लगातार टाइप होने वाली डीड, हलफनामे, मुक़दमों की अपील वग़ैरह के साफ़-सुथरे कानूनी काम और वकीलों न्यायधीशों के बीच उठने-बैठने से अलग और दूर, कामिल ने अपना नया काम, उसी भोजनालय के अन्दर वाले उस छोटे कमरे से शुरू किया जिसे सब्जियों, आटा, बर्तन वग़ैरह का स्टोर बनाया गया था।

धर्मस्थल में तीन तरह के क़ैदी आते थे।

पहले क़ैदी वे होते थे जो पुलिस थानों से अदालत लाए जाते थे। यहाँ उनकी जमानत होती तो छोड़ दिए जाते या फिर जेल भेज दिए जाते। हथकड़ी पहने ये दो पुलिस वालों के साथ शहर के अलग-अलग हिस्सों से और कभी बाहर से भी आते। ये पैदल होते या फिर कभी रिक्शे पर आ जाते। ये वे होते जिन्हें अपराध में पुलिस पकड़ लेती फिर धर्मस्थल में पेशी के बाद उनका फ़ैसला होता।

दूसरे क़ैदी वे होते जो जेल में बन्द होते और जिनके मुक़दमे चल रहे होते। एक तारीख़ को इस तरह के सारे क़ैदियों को पुलिस की बड़ी गाड़ियों में लाया जाता। यह गाड़ी चारों तरफ़ से चौकोर ख़ानों वाली जाली से बन्द होती जिसमें दो उँगलियाँ जा सकती थीं। गाड़ी के अन्दर वे सब क़ैदी ठूँस दिए जाते। कुछ सीट पर बैठ जाते... कुछ घुटने मोड़कर बस के फर्श पर बैठे जाते, कुछ जाली से मुँह चिपकाए खड़े रहते। इनकी सुनवाई की तारीख़ तय होती इसलिए इनके परिचित उस दिन धर्मस्थल के दरवाज़े पर इधर-उधर छितरे, गाड़ी के आने का इन्तज़ार करते। जैसे ही गाड़ी आती चारों ओर से निकल कर वे सब गाड़ी को घेर लेते। बेचैन, थकी आँखों से बस की जाली से चिपके चेहरों में अपने आदमी को ढूँढते। वे सब क़ैदी एक एक करके बस से उतरते। उन सबके हाथों में रस्सी या हथकड़ी बंधी होती। उन्हें देखते ही उनके घरवाले पुलिस के घेरे से बाहर चीख़-चीख़ कर उनसे बात करते। उनके हाथों में कुछ खाने का समान देने की कोशिश करते। पुलिस वालों की चिरौरी करते। आसपास खड़े ठेलों से कुछ ख़रीद कर उनकी जेब में डालते, हाथ में पकड़ा देते।

सर्दियों में मूंगफली, गर्मियों में खीरा, ककड़ी या बेल का शर्बत, बरसातों में भुट्टा होता। बदले में पुलिस वाले चाल धीमी कर लेते। रुक कर ऊपर आसमान में उड़ते कौए देखने लगते।

क़ैदियों से मिलने आए ये लोग रिश्तों में अलग-अलग होते थे। कोई औरत गोद के छोटे बच्चे को हवा में उठाकर क़ैदी को दिखाती। कभी बूढ़ी माँ पेड़ के नीचे बैठी क़ैदियों में अपने बेटे को दूर से देखती रहती। कभी जवान भाई दौड़ कर वकील के पास जाते। गाड़ी आने की सूचना देते। इन क़ैदियों में हर उमर के लोग होते। कुछ की आँखों में गहरा पश्चाताप, पछतावा होता, कुछ सर झुकाए चुपचाप रहते, कुछ हँसते हुए उतरते। इन सबको एक क़तार में खड़ा करके पुलिस धर्मस्थल के अन्दर ले जाती। बम पुलिस के पास चार कमरे इसीलिए बने थे। उनमें लोहे की सलाखों वाले दरवाज़े थे। क़ैदियों की यह क़तार जब तक उन कमरों में पहुँचती उनके घर वाले क़तार में उनके साथ-साथ चलते। उन्हें छूने की कोशिश करते। उनकी ज़रूरत पूछते। उसे दूर करने का आश्वासन देते। धैर्य, हौसला बँधाते। इन क़ैदियों को उन कमरों में ले जाकर बन्द कर दिया जाता। सलाखों वाले दरवाज़े के बाहर खुली जगह में पेड़ के नीचे या दूसरी इमारत के गलियारे में उनके घर वाले बैठ जाते। सलाखों के पार वे अपने आदमी को देख सकते थे। सलाखों के अन्दर से वे अपने घर वालों को।

इन क़ैदियों को बहुत कुछ चाहिए होता था। उनके कपड़े फटे, पुराने होते। बालों में धूल, गर्द जमा होती। उन्हें सर्दियों में मोटा कम्बल, गर्मियों में कोई पंखा चाहिए होता। साबुन, तेल और धुले कपड़े चाहिए होते, उन्हें अच्छा खाना चाहिए होता। घर वालों के पत्र चाहिए होते। घर वालों को ज़मीन-जायदाद, कानूनी लड़ाई और पैसों के इन्तजाम के बारे में लिखना होता। इन्हें विश्वास चाहिए होता कि वे अभी इसी दुनिया के हैं। अभी सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ है। अभी न्याय होगा। अभी उन्हें बचा कर, छुड़ा कर बाहर निकाल दिया जाएगा। वे क़ैदी ही इन कमरों में बन्द किए जाते जिनके मुक़दमे निचली अदालतों में चल रहे होते।

तीसरे क़ैदी वे होते जिनके मुक़दमे ऊपरी अदालत में होते। उन्हें भी इसी तरह लाया जाता। सुनवाई तक उन्हें बन्द रखने की जगह दूसरी थी। यह सीढ़ियाँ उतर कर, तहख़ाने में बना एक लम्बा कमरा था। सीढ़ियों पर लोहे के फाटक एक सिपाही खड़ा रहता था। क़ैदियों को नीचे उतारने के बाद वह फाटक बन्द हो जाता। फिर वे क़ैदी नीचे एक बड़े कमरे में बंद हो जाते। इनके घर वाले इन्हें सलाखों के पीछे नहीं देख पाते थे। वे सिर्फ़ सीढ़ी के लोहे के फाटक तक उनके साथ आते फिर छूट जाते।

बम पुलिस के साथ के कमरों से वे सब कभी अलग और कभी एक साथ अदालतों में ले जाए जाते। उनके लोग फिर पेड़ों के नीचे से हड़बड़ा कर उठते और उनके पीछे भागते। अपने वकील को पकड़ कर लाते। हथकड़ी में जकड़े वे सब जानवरों के झुण्ड की तरह घसीट कर, दुत्कारे जाते हुए अदालत के अन्धेरे कोने में एक तरफ़ खड़े कर दिए जाते। घर वाले दरवाज़े के बाहर या अन्दर कुछ दूर आकर खड़े हो जाते। काला कोट पहन कर हड़बड़ाता, किसी दूसरी अदालत से भागता हुआ वकील आता। अन्दर अपने चेम्बर से निकलकर धर्माधिकारी आता। उसकी मेज़ के पास कुछ दूसरे मुक़दमों के वकील भी खड़े होते। उसका पेशकार उसके सामने फाइल खिसका देता। झुककर कान में धीरे से कुछ कहता। वह वकीलों की बात सुनता। उड़ती हुई निगाह झुंड में खड़े लोगों पर डालता। वह वकीलों से भी कुछ फुसफुसा कर कहता। फिर उन सबको अगली तारीख़ दे दी जाती। राहत की गहरी साँस लेकर पुलिस वाले उन सबको उसी तरह घसीट कर कमरे से बाहर निकालते। घर वाले सूनी और बेबस आँखों से हथकड़ी में जकड़े अपने आदमी को देखते। काले कोट वाले वकील भागते हुए किसी दूसरी अदालत के, दूसरे मुक़दमे की पैरवी में चले जाते। धर्माधिकारी वापस अन्दर अपने चेम्बर में लौट जाता। पेशकार तारीख़ें बढ़ा कर अगली तारीख़ की घोषणा करता फिर सर झुकाकर हिसाब लगाने लगता कि तारीख़ देने के किससे कितने रुपए लेने हैं। शाम तक उसकी यह गिनती सैकड़ों रुपयों में पहुँच जाती। इसके हिस्से किसको कहाँ पहँचाने हैं वह यह हिसाब भी जेब के काग़ज़ में लिख लेता। जितनी ज़्यादा तारीख़ें, जितने लम्बे खिंचते मुक़दमें, उतने रुपए। धर्मस्थल के हर कमरे में, हर कोने में यह हिसाब उँगलियों पर निरन्तर चलता रहता था। यह हिसाब क़ैदियों के पीछे लिथड़ते, हाँफते घर वाले नहीं जानते थे। वे दूसरा हिसाब लगाते कि अगली तारीख़ में कैसे, कहाँ से कितना रुपया लेकर आना होगा।

अदालत में सुनवाई के बाद ये सब उसी तरह वापस जेल जाने के लिए लौटते। बस में चढ़ने से पहले वे देर तक अपने घर वालों को देखते रहते। बस में चढ़ने के बाद भी वे कोशिश करते कि जाली के पास बैठें जिससे उन्हें देख सकें। बस में सबको चढ़ाने के बाद बस का दरवाज़ा बन्द करके ताला लगा दिया जाता। तब बस कुछ देर के लिए रोक ली जाती। यही वह समय होता था जब घर के लोग पंजों के बल उचक कर जालियों के अन्दर दो उँगली डालकर उन्हें छू लेते। उनसे बात कर लेते। इतने पास से कि वे एक दूसरे की आँखों का पानी देख सकते। एक दूसरे की खाल के बदलते रंग को पहचान सकते। कुछ देर उँगलियाँ छूने के बाद औरतें आँचल में मुँह छुपा कर रोतीं। आदमी माथे पर हाथ फेरकर ईश्वर के न्याय

पर भरोसा रखने का आश्वासन देते।

बस स्टार्ट करने के पहले पुलिस वाले सबको जालियों से दूर कर देते। बस स्टार्ट होकर काला धुआँ छोड़ती फिर उन सबको वापस जेल की कोठरियों में ले जाती। सब फिर छितरे हुए, इधर, उधर झुण्ड में खड़े, तब तक बस को देखते जब तक वह ढाल से उतर कर खो नहीं जाती।

ये सब ग़रीब, मजबूर, वंचित लोग होते थे। जो सम्पन्न थे, जो शक्तिशाली थे, वे जानते थे कि धर्मस्थल में जिस कानून की प्राण प्रतिष्ठा होती है उसे कैसे चीर फाड़ दिया जाता है। जो अपराध जगत में लिप्त थे, वे जब चाहते जेल में अपने परिचितों से मिल लेते। जो सामान चाहता उसे पहुँचा देते। वे इस तरह इन गाड़ियों की प्रतीक्षा नहीं करते। वे इस तरह नहीं रोते। उनके परिचित इस तरह जेल में मुक़दमों के बीच कभी बन्द नहीं होते। धर्मस्थल के कानूनों को, प्रावधानों को वे ख़रीद सकते थे, उसके लिए लड़ सकते थे। उनकी आँखों पर काला चश्मा, हाथों में 555 सिगरेट की डिब्बी और बदन पर सफारी सूट होता। वे जब गाड़ी से उतरते तो पुलिस उनके पीछे होती। कानून की व्याख्याएँ वे तय करते। प्रावधानों को तहख़ानों के अन्धेरों से भी ढूँढ कर लाने की क्षमता रखते। गाड़ियों की प्रतीक्षा करने वाले लोग इन प्रावधानों को जानने के बाद भी असमर्थ थे। जब उनका वकील उन्हें इनके बारे में बताता, इनका ख़र्च बताता, तो वे फटी आँखों से उसे देखते फिर ऊपर हाथ उठाकर ईश्वर से न्याय की माँग करने लगते। उसके सहारे की उम्मीद में गर्म साँस छोड़ते।

पर धर्मस्थल इसी धरती पर था। यहाँ उसी का न्याय था और यहाँ किसी भी सहारे के लिए उनके पास एक ही आदमी था... कामिल।

मून का भोजनालय जेल के सामने होने से कामिल का क़ैदियों वाला नया काम आसान हो गया था।

दाक्षायणी ने उसे जोड़ कर रखे हुए रुपए दे दिए थे। ये सारे नोट, सिक्के उसने कामिल के सामने निकाले। वे अलग-अलग जगहों पर रखे थे। नोट बुरी तरह मसले हुए थे। वे जहाँ से भी निकाले गए थे वहाँ बहुत समय तक दबाकर रखे गए थे। वे आँचल की गाँठ में थे, ताबीज़ में थे, मिट्टी की गुल्लक में थे, कपड़ों की तहों में थे। वे बर्तनों में थे, पसीने से भीगी जेबों में था। उन पर धब्बे थे, कालिख थी, सिन्दूर के, काजल के रंग थे। उनमें पुराने काग़ज़ों की गन्ध थी। मसालों की, अन्न की, सीलन की महक थी। उन सबकी एक गड्डी बनाकर उसने चौकी पर रखी। प्रतिमा के चरणों में छुआ कर कामिल को दे दी थी।

मून के भोजनालय में बैठकर कामिल ने पूरी योजना बनाई थी।

जेल, उससे सटी पुलिस लाइन और बैरकों में रहने वाले सिपाही भी मून के भोजनालय में खाते थे। धर्मस्थल बन्द होने के बाद मून भोजनालय का सड़क की तरफ़ का हिस्सा पूरा खोल देता। उस तरफ़ सिर्फ़ सिपाही थे। परेड ग्राउण्ड, पुलिस लाइन, जेल और सिपाहियों के रहने की पुरानी बैरकें थीं। मून को हर सिपाही जानता था, मून हर सिपाही को। सबके उधार के खाते मून की दुकान पर चलते थे। मून कुछ को रात में अन्दर के कमरे में बैठकर शराब पीने की छूट भी दे देता था।

मून ने जेल के कुछ सिपाहियों से कामिल को मिलाया था। इसमें गाड़ी के तीन ड्राइवर और रिकार्ड रूम के मुंशी भी थे। जिन क़ैदियों की तारीख़ पड़ती थी उनसे एक दिन पहले ही वे सिपाही बात कर लेते थे। बाहर क्या चाहिए? खाने के पैकेट, रेजर, ब्लेड, चार डिबियाँ कैवेण्डर्स सिगरेट, खशबू वाला तेल, नए कपड़े, बीवी से मुलाक़ात, रुपए। यह लिस्ट कामिल के पास पहुँचती। हर क़ैदी के नाम के आगे उसकी ज़रूरत लिखी होती।

गाड़ियों से उतरने के बाद ये क़ैदी बम पुलिस के पास के कमरों में बन्द कर दिए जाते। खाने को पैकेट उन्हें वहीं दिए जाते। सलाखों के पास संतरी उनके घर वालों को थोड़ी थोड़ी देर में भगाते रहते, पर खाने का पैकेट अन्दर पहुँचा देते। उनकी माँ, बीवी, या पिता बाहर पेड़ के नीचे या गलियारे में या सलाखों के सामने बम पुलिस की दीवार से चिपके उन्हें खाना खाते देखते रहते। वे क़ैदी जब वापस लौटते तब गाड़ी में चढ़ाए जाने के पहले उनका सामान सिपाहियों को दे दिया जाता जो बाद में उनकी कोठरी में पहुँच जाता।

कामिल पूरा हिसाब रखता। छोटी लेजर बुक में क़ैदियों के नाम का खाता खुला रहता। उसमें ख़र्च का ब्यौरा चढ़ा होता। सूद पर दी जाने वाली रकम चढ़ी होती, ब्याज चढ़ा होता। इस पैसे के भुगतान की जिम्मेदारी या तो वकील के द्वारा तय होती या जेल के सिपाहियों के द्वारा। क़ैदियों की पिछली पेशी का हिसाब अगली पेशी में साफ़ होना ज़रूरी था। ऐसा न होने पर उसके बाद वाली पेशी में क़ैदी को कुछ नहीं मिलता। उसके घर वाले वकील की फीस के साथ कामिल के रुपए भी लाते।

कामिल के क़ैदियों का दायरा भी बढ़ गया था। शहर से बाहर के जो क़ैदी धर्मस्थल में आते और जिन्हें शाम को वापस लौटता होता, वह भी कामिल को ढूँढने लगे थे। शाम को अगर रेल नहीं होती तो वे वापस नहीं लौट पाते। उन्हें थाने में जमा होना चाहिए होता, पर कामिल उनके दो-तीन घंटे घूमने का इन्तजाम कर देता। इसमें वह बाज़ार भी हो आते, शराब भी पी लेते और पतली गली में दरवाज़ों पर

बैठी औरतों के पास भी हो आते। उनके आने का समय, रवानगी सब कामिल ठीक करवा देता।

हर क़ैदी ये सुविधाएँ चाहता था। हर क़ैदी के घर वाले उसे ये सुविधाएँ देना चाहते थे। कामिल जेल में सज़ा काट रहे क़ैदियों की भी पूरी व्यवस्था करने लगा। चिट्ठियों का लाना ले जाना, सर्दियों के कपड़े, हर समय घर का खाना, ट्रांजिस्टर, ताश... जुए के लिए ज़्यादा रुपए, सब पहुँचाने लगा। सिपाहियों से होते हुए जेलर तक उसने सम्बन्ध बना लिए थे।

कामिल के उधार का दायरा भी बहुत बड़ा हो गया था। धर्मस्थल के टाइपिस्ट, वकीलों के मुंशी, ईमानदार पेशकार, सिपाही, बेरोज़गार वकील, साइकिल स्टैण्ड, मस्जिद का मौलाव़ी, ऊपरी कमाई से वंचित दफ्तरों के बाबू, रोज़ नशा करने वाले वकील, पकड़ी गई वेश्याएँ... भी उससे क़र्ज़ पर रुपए लेते।

कामिल का खाता बहुत मोटा हो गया था। उसमें असंख्य लोगों के नाम थे, उनके पेशे थे, उनके ऊपर चढ़ी रकम और मिलने वाली रकम थी, ब्याज का जोड़ था, ख़र्च के ब्यौरे थे। शाम को धर्मस्थल बन्द होने के बाद मून के भोजनालय में बैठकर कामिल रोज़ का हिसाब लिखता। कभी उन वकीलों के बस्तों पर हिसाब करने चला जाता जहाँ ज़्यादा अन्धेरा होने के बाद जुए की फड़ जमती, शराब चलती और बहुत रात किसी मुवक्किल औरत को रुकना पड़ता।

फिर कामिल ने एक दिन यह पूरा खाता दाक्षायणी को दे दिया। दाक्षायणी हिसाब रखने लगी। कुछ ही दिनों में दाक्षायणी को बहुत कुछ ज़बानी याद हो गया। कौन सा क़ैदी किस दफा में, कितने साल के लिए सज़ा काट रहा है। कितनों पर मुक़दमा चल रहा है, किसकी तारीख़ कब पड़ने वाली है। किसके घर में कितनी ज़मीन, ढोर ढंगर हैं। उसे क़ैदियों के नाम याद रहने लगे। उसे अपराध करने के तरीक़े, कानून, उसकी दफाएँ, उनकी सज़ाओं के बारे में मालूम रहने लगा। देवताओं के साथ ही एक साँस में वह यासीन लंगड़ा, काला पहाड़, झबरैला टाइगर, के इतिहास और जीवन के बारे में जानने लगी थी।

कामिल अब टाइपिंग का काम नहीं देख पाता था। वकीलों का काम समय पर वापस नहीं कर पाता। वे कामिल से झगड़ते। मुवक्किल को समय पर काम नहीं मिला तो फौरन वकील बदलेगा। डीड में गलतियाँ होने लगी। कामिल ने दाक्षायणी को बताया।

दूसरे दिन कामिल मून के भोजनालय में बैठा था जब एक लड़का उसको पूछता हुआ आया। उसकी उमर लगभग बीस वर्ष की थी। चेहरे पर सौम्यता थी। देह में फुर्ती और आँखों में गहरा आत्मविश्वास था। उसके कपड़ों के रंगों में एक

लय थी। कोट आधुनिकतम डिजाइन का था। पैरों में भेड़ के बच्चे की खाल का जूता था। मून ने कामिल की तरफ़ इशारा किया। वह कामिल के पास आया। उसने हाथ जोड़े, सर झुकाकर धीरे से बोला,

"मेरा नाम मादल है।"

कामिल सुबह जल्दी ही मून के भोजनालय पहुँच गया। हल्की बूँदा बाँदी हो रही थी। भोजनालय के अन्दर खाने की बड़ी मेज़ों पर चादर लपेट कर आड़े तिरछे लेटे लड़के सो रहे थे। घुटने मुड़े पैरों के बीच हाथ डाले, उनकी अधखुली आँखों में गहरी नींद थी। लगातार पानी में काम करने से सूजी ऊँगलियाँ, फटी एड़ियाँ दिख रहीं थीं। कमर पर लिपटे कपड़े अस्त-व्यस्त थे। कुछ का अन्दर का हिस्सा दिख रहा था।

एक लड़का रात के उबले हुए आलुओं को छील रहा था। कामिल को देखकर वह मुस्कुराया। कामिल एक कुर्सी पर बैठ गया।

"चाय बनाऊँ?" आलू छीलना रोक कर उसने पूछा।

"नहीं" कामिल ने सर हिला दिया। लड़का फिर सर झुकाकर आलू छीलने लगा। कामिल ने सर घुमा कर चारों ओर देखा। मून ने भोजनालय बड़ा कर लिया था। रसोई अलग बना ली थी। एक दूसरे छोटे कमरे में स्टोर कर लिया था। हरे रंग की दीवारों पर कई तरह के देवताओं के कैलेण्डर लटक रहे थे। दरवाज़े के पास ही शीशे का काउण्टर बना था। इसमें अन्दर कुछ मिठाइयाँ रखी थीं। ऊपर जार में बिस्किट रखे थे। पूरे भोजनालय में दस बड़ी मेज़ें और साठ कुर्सियाँ थीं।

कामिल ने बाहर बादलों को देखा। उनका रंग काला था, पर बहुत गाढ़ा नहीं था। रात भर तेज़ बारिश हुई थी। बाहर के गड्ढों में पानी अभी जमा था। भोजनालय के अन्दर भी टूटी छत से बहकर आया था। हरे रंग की दीवार पर पानी की बदरंग लकीर बनी थी। उसके नीचे फर्श पर पानी अभी जमा था।

कामिल ने मुँह फैला कर एक जम्हाई ली। रात को वह सो नहीं पाया था। जिस समय तेज़ बारिश हुई बाबू ने उसे नींद से उठा दिया।

"जीवन नष्ट मत करो सो कर। ऐसी बारिश हमेशा नहीं होती।"

आधी नींद में उठकर कामिल ने देखा। वह कमरे के दरवाज़े पर बैठे थे। सामने खुली जगह पर मोटी बूँदें गिर रहीं थीं। टीन पर गिरते पानी का तेज़ शोर हो रहा था। फर्श पर पानी भर गया था।

"तुम देखो... मेरा अभी पूरा जीवन पड़ा है।" कामिल लेटते हुए बोला।

कामिल को वापस लेटते देखकर उन्होंने उसका पैर हिलाया।

''उठो यार...एक चाय पिलाओ न। फिर तुमको उस अभिसारिका का क़िस्सा सुनाता हूँ जिसे ऐसी बारिश की रात अपने प्रेमी से मिलने जाना था।''

कामिल उठ गया। वह जानता था कि अब सो नहीं पाएगा। उसने ऊँगलियों से आँखों को रगड़ा फिर ठीक से देखा। दरवाज़े की चौखट पर बैठे वह बच्चों की तरह हाथ बाहर निकालकर हथेली पर बूँदों का गिरना देख रहे थे। मुट्ठी बन्द कर रहे थे, खोल रहे थे।

''कितनी चाय पिओगे?'' कामिल उठ गया।

''तीन'' उन्होंने हाथ उठाकर दूसरी हथेली की तीन ऊँगलियाँ दिखाईं।

कामिल ने अपने निश्छल पिता को देखा फिर मुस्कुराया।

बाहर की जगह पार करके वह रसोई में चला गया। रात को दूध उबालकर रख दिया था। उसने स्टोव पर चाय का पानी चढ़ा दिया। अलमारी से ढूँढकर बड़ा फ्लास्क निकाल लिया फिर वह भी बाहर बारिश देखने लगा।

जब से दूसरा भाई भी गया था कामिल दाक्षायणी के पास रात को नहीं रुकता था। बाबू अकेले होते थे। रात भर जागते थे। कुछ भी चाहिए होता था उन्हें। बारिश की बूंदों के पीछे वह उसे दिख रहे थे। मुग्ध भाव से बारिश देखते। हो सकता था अभी उठ कर भीगने लगें। कामिल को भी खींच ले। फिर कामिल को उनके साथ भीगना पड़ता। तौलिए से उनके पूरे बदन को पोछना पड़ता। नए कपड़े देने होते। कामिल न हो, तो हो सकता था भीगने के बाद गीले कपड़ों में ही बैठे रहते, हो सकता था चाय की तलाश में भीगते हुए बाहर सड़क पर निकल जाते।

कुछ देर में चाय से पूरा फ्लास्क भर कर कामिल बाहर ले आया। उसके दूसरे हाथ में दो गिलास थे। एक के अन्दर रखा हुआ दूसरा। कमरे में आकर वह भी चौखट के पास फर्श पर बैठ गया। गिलासों को उसने अलग किया। गिलासों में चाय डाली। एक उन्हें दे दिया। चाय का गिलास लेकर उन्होंने उससे उठती भाप को सूँघा फिर आनन्द से आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद खोलीं फिर घूँट लेते हुए बारिश देखने लगे।

चाय के कुछ घूँट लेने के बाद कामिल ने पूछा, ''क्या किया उसने?''

''किसने?''

''अभिसारिका ने?''

''अरे हाँ... वह तो मैं भूल ही गया। तो... उसने उस रात प्रेमी से मिलने के लिए आभूषणों का नहीं फूलों का शृंगार किया था। वासन्ती और कुन्द के पुष्पों के साथ मिले कुरवक के फूलों से जूड़ा सजाया, चोटी के छोर में अशोक के फूल

लगाए, स्तनतट सिन्दुवार से, नए आम की मंजरी से कर्णपूर, फूलों के ही कंगन, करघनी, नूपुर सब पुष्प ही पुष्प। सुवदने मूर्तिमन्त वसन्तम। ख़ुद मूर्तिमान वसन्त हो गई थी वह। पर अब जाए कैसे ? अचानक भयानक वृष्टि। रास्ते कीचड़ से लथपथ। इसमें जाए तो खेतों तक पहुँचते वसन्त की भूतनी दिखने लगे।'' चमकती आँखों से उन्होंने कामिल को देखा। उनमें शरारत थी... कौतुक था।

''फिर... ?'' उत्सुकता से कामिल ने पूछा। उन्होंने गिलास ख़ाली कर दिया।

''पहले दूसरी चाय।''

कामिल ने गिलास को चाय से भर दिया।

''हाँ...फिर क्या... वह नहीं जा पायी। गहने उतारती जाती और रोती जाती। इतना रोयी, इतना रोयी कि जो गाँव बारिश के पानी में नहीं बहा था, उसके आँसुओं की बाढ़ में बह गया। साला प्रेमी भी उसी में बह गया। क़िस्सा ख़त्म।'' उन्होंने एक साँस लेकर मुँह घुमा लिया। फिर बारिश देखने लगे।

''पता नहीं कैसे अम्मा ने तुम्हारे साथ जीवन काटा होगा।'' कामिल धीरे से हँसा। वह कुछ नहीं बोले। चुपचाप बाहर देखते रहे। कुछ देर बाद बिना सर घुमाए उन्होंने पूछा।

''बड़े से बात हुई इधर ?''

''नहीं... दो बार दफ्तर फ़ोन मिलाया पर मिले नहीं''

''उसे अब मुझसे कोई मतलब नहीं... और एक यह है।'' उन्होंने खुली जगह के पास कमरे के दरवाज़े पर बन्द ताले की ओर इशारा किया, ''कमरा बन्द करके रखा है। हम दोनों इस कोठरी में पड़े हैं। आता भी है तो नज़र बचा कर निकलने की कोशिश करता है... कहीं मैं कमरा न माँग लूँ।''

''तुमने अपना कमरा दिया ही क्यों था ?''

''नई शादी थी... सोचा ज़रूरत पड़ेगी। तुम्हारी माँ ने भी ज़िद की। हमारा क्या था... हम दोनों इसी में रह लिए।''

''तुम रोकते हो वरना अभी ताला तोड़ देता हूँ।''

''...नहीं... बहुत कलुष और ओछापन है उसके मन में। जब यहाँ रहता था तो अपने बच्चों के लिए कपड़ों में छुपा कर मिठाई लाता था। कहीं मैं देख न लूँ... देनी पड़ती न फिर... ताला तोड़ोगे तो झगडा करेगा...''

''वह सब मैं देख लूँगा... तोड़ूँ ?''

वह कुछ नहीं बोले। ख़ाली गिलास उन्होंने कामिल की तरफ़ बढ़ाया। कामिल ने फ्लास्क की बची चाय उसमें डाल दी। उन्होंने गिलास मुँह से लगा लिया, इस तरह कि चेहरा न दिखे। कुछ देर इसी तरह चाय पीते रहे फिर धीरे से बुदबुदाए,

''उस साँप को हर कोई पत्थर मारता है जो फुफकारना छोड़ देता है।'' गिलास उन्होंने चेहरे से नहीं हटाया। कुछ क्षण बाद ही वह सहज हो गए।

''इसीलिए कहता हूँ तुमसे, शादी कर लो। मेरी देखभाल तो तुम कर लेते हो, पर कोई तुम्हें भी चाहिए अपनी देख भाल के लिए।'' उनकी आँखें फिर चमकने लगीं।

''और जब इस तरह सुबह तीन बजे चाय पीनी होगी तब किसे जगाओगे?''

''अरे हाँ... यह तो सोचा ही नहीं!'' फिर जैसे अचानक उन्हें कुछ याद आया... ''अरे!'' वह कुछ बोलते इसके पहले कामिल ने उन्हें रोक दिया।

''और माँ माँ मत करना। मैंने माँ से कहा था तुम्हें दर्शन देने को। उसने कहा, पहले यह बताओ तुम्हारे पिता अगर मेरे पुत्र हैं तो तुम मेरे क्या हुए।'' कामिल उठ गया, ''और अब सोने की तैयारी करो। कुछ देर में सुबह हो जाएगी।'' कुछ क्षण वह कामिल की बात पर सोचते रहे।

''यही ठीक है।'' उन्होंने फिर गिलास ख़ाली कर दिया। उसे फ़र्श पर उलटा रखकर कोने की अलमारी की ओर इशारा किया।

''ज़रा वह तो उठाओ। तुम्हें चखाता हूँ। कल रात ही बनाया है।''

कामिल ने सर घुमा कर देखा। काँच की बड़ी गोल शीशी में काले रंग का चूरन था। कामिल ने शीशी लाकर उन्हें दे दी। उन्होंने शीशी का ढक्कन खोलकर चूरन अपने हथेली में पलटा और फाँक लिया।

''लो।'' उन्होंने कामिल को इशारा किया, ''बताओ कैसा बना है?''

कामिल ने हथेली फैला दी।

''है क्या?''

''शिव जी का प्रसाद है... और क्या होगा?''

''अरे तो सीधे बोलो कि भाँग का चूरन है।'' कामिल ने भी उसे फाँक लिया

''क्यों बोलूँ ? दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं दिखता तुम्हें ? तुम्हारा सौन्दर्य बोध, भाषा, संस्कार सब मरता जा रहा है। कैसा बना है यह तो बताओ।''

''बचपन से बना रहे तो। तुम्हारी जोड़ का पूरे देश में कोई होगा भला?''

''लच्छू महाराज भी यही कहते हैं। जब मेरे बोल पर ताण्डव करने जा रहे थे तो मैंने कहा था महाराज थोड़ा सा कोने में डाल लीजिए। शंकर प्रसन्न हो जाएँगे। आप नहीं साक्षात वही ताण्डव करेंगे फिर...''

कामिल ने ख़ाली गिलास उठा लिए। उन्हें रसोई में वापस रखकर आ गया। हाथ पकड़ कर उन्हें सहारा दिया।

''सुबह हो रही है। सो जाओ अब।''

वह उठे। चूरन को उन्होंने कुछ देर मुँह में जीभ के सहारे घुमाया फिर पानी के साथ उसे निगल कर बिस्तर पर लेट गए। कुछ देर हाथ पैर हिलाने के बाद बाँयीं करवट पर लेट गए वह। आँखें बन्द हो गईं। घुटने थोड़े मुड़े हुए थे। मुँह खुला था। कामिल ने देखा। साँस लेने में उनका पसलियों वाला पेट ऊपर नीचे हो रहा था। मुँह से आवाज़ निकल रही थी। लगातार तेज़ बारिश से मौसम ठण्डा हो गया था। वह हल्का सा काँप रहे थे। उनके एक कान के नीचे की नस फूली हुई थी। चेहरे की खाल का पीलापन दिख रहा था। हाथ की उँगलियों पर खाल की सिकुड़न बहुत बढ़ गई थी। पूरा शरीर इस तरह एक साथ देखने पर वह छोटे और कमज़ोर दिख रहे थे। कामिल ने उनके पैरों के नीचे दबी चादर धीरे से खींच कर उन पर डाल दी।

चादर डालकर वह उठा तो उसकी नज़र मूर्ति पर गई। मिट्टी के कुछ हिस्सों पर गहरा रंग चढ़ा था। सुर्ख...हरा और नीला! पास में बहुत से काग़ज़ पड़े थे। झुककर उसने वे काग़ज़ उठा लिए। उनमें मूर्ति से जुड़ी कई बातें लिखी थीं। एक में आभूषणों के नाम थे। कर्णवली, लम्बक, कर्णपूर, कलश, मणिकुण्डल, वैकक्ष्य, मेरवला! एक में अष्टताल में मूर्ति के अंगों का अनुपात लिखा था।

चेहरा	12 अंगुल
गर्दन	4 अंगुल
गर्दन से छाती	10 अंगुल
छाती से नाभी	10 अंगुल
नाभी से योनि	10 अंगुल
जंघा	21 अंगुल
घुटना	4 अंगुल
घुटना से घुट्ठी	21 अंगुल
पैर	4 अंगुल

पाँवों की नृत्य मुद्राएँ बनी थीं। ज़्यादातर उस दूसरे पैर की जो कान तक जा रहा था। कई रेखांकनों के बाद एक में लाल घेरा बना था। इसमें पूरा पैर बाँह की तरह गोलाई में उठा हुआ था। उसका अँगूठा कान को छू रहा था। कामिल ने काग़ज़ों को ईंट के टुकड़े से दबा कर रख दिया।

नींद अब ख़त्म हो गई थी। बारिश धीमी थी। कामिल ने एक छोटी अलमारी खोलकर काग़ज़ का पैकेट निकाला। बाहर आकर दरवाज़ा खींचा फिर मून के भोजनालय में आ गया था।

मून जब आया बारिश बन्द हो गई थी।

''इतनी सुबह?'' कामिल को देखकर वह बोला।

''उठ गया जल्दी तो इधर ही आ गया।''

साइकिल को अन्दर के कमरे में खड़ा करके वह कामिल के पास आ गया।

''उठो सब।'' वह चिल्लाया। मेज़ पर लेटे लड़के हड़बड़ा कर उठ गए।

''तुमने इनको उठाया क्यों नहीं?'' उसने आलू छीलने वाले लड़के से पूछा। वह कुछ नहीं बोला।

वे लड़के चादर लपेट कर मेज़ से उतर आए। स्टोर में जाकर उन्होंने चादर रख दी। वहाँ से अपने तौलिए कपड़े लिए और बाहर निकलकर बम पुलिस चले गए।

''आज सैतीस पैकेट हैं।'' कामिल ने जेब से एक काग़ज़ निकालकर मून को दिया।

''पहली गाड़ी ग्यारह बजे आएगी। उसमें बाइस पैकेट और दूसरी एक बजे उसमें पन्द्रह पैकेट।''

मून ने काग़ज़ देखा। उसमें क़ैदियों के नाम लिखे थे।

''यह काग़ज़ रखना है?'' उसने पूछा।

''हाँ... मैं शाम को सबके खाते में चढ़ा दूँगा। और हाँ सात डिब्बे पुलिस वालों के अलग।''

''तुम बैठो अभी... मैं ज़रा कुछ सामान ले आऊँ।''

मून ने फिर साइकिल उठा ली।

''मिठाई भी रख दूँ?''

''हाँ।''

मून बाहर निकल गया।

कोने में एक खाट पड़ी थी। उसकी रस्सी ढीली होकर लटक गई थी। कामिल को अचानक लगा कि वह कुछ देर सो सकता है।

''मून आए तो मुझे जगा देना।'' उसने आलू छीलने वाले लड़के से एक आलू लिया। काउंटर पर रखा नमक अपनी हथेली पर छिड़का। आलू में नमक लगाकर उसने आलू खाया फिर खाट पर लेट गया।

सन् 80 में मुझे विदेश में कामिल का पहला पत्र मिला। उससे पता लगा कि बाबू आनन्द स्वरूप का देहान्त हो गया। मृत्यु से एक दिन पहले मादल उनके घर आया तो उन्होंने उसे बाहर के कमरे में ही रोक लिया।

''मैं भी कचहरी चलूँगा तुम्हारे साथ...'' उन्होंने कहा।

मादल ने देखा उन्हें। वह कपड़े पहने तैयार बैठे थे। मादल ने अन्दर दाक्षायणी को बताया। वह कमरे में आई।

''कहाँ जाएँगे आप?'' उसने तेज़ आवाज़ में पूछा।

''कचहरी।'' आनन्द स्वरूप ने सर झुकाए धीरे से कहा।

''क्यों जाएँगे... यहाँ रखी है क्या? सर्दी है... टैम्पो से जाना होता है। फिर क्या करने जाएँगे? क्या काम है आपको?'' वह उनके पास आ गई।

''मुझे बताइए कुछ चाहिए। मैं मँगवा देती हूँ।''

''जीवन का अन्त हो इसके पहले वह जगह देखना चाहता हूँ जहाँ पूरा जीवन बिताया है।''

बाबू आनन्द स्वरूप ने सर उठाकर दाक्षायणी को देखा। वह चुप रह गई।

''मोह होता है। एक बार देख आऊँ। पता नहीं फिर कब जाना हो।''

दाक्षायणी कुछ नहीं बोली। झटके से अन्दर चली गई। अन्दर से उसने मादल को आवाज़ दी। उसे रुपए दिए।

''रिक्शा करके ले जाओ। वहाँ कहीं बैठा देना। ज़्यादा घूमने मत देना। साथ ही रहना और लौटना भी साथ। रिक्शे वाले को रोक कर रखना।''

आनन्द स्वरूप उस दिन धर्मस्थल गए। उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया। चारों ओर दुकानें, भीड़, ठेले, शोर था। बड़े-बड़े बोर्ड थे। बैनर थे। जानवरों के झुण्ड थे। गाड़ियाँ थीं। दरवाज़े सब छुप गए थे। उसके मुख्य द्वार से तोप भी हट कर संग्रहालय चली गई थी।

अन्दर टीन के, पटरों के वकीलों के छोटे-छोटे बस्ते बने थे। हर खुली जगह को उन्होंने दबोच लिया था।

मादल उन्हें अपनी जगह पर ले गया। लायर्स एसोसिएशन के कमरे के एक कोने में वह बैठ गया। उनके शतरंज खेलने की जगह पर ठण्डे पानी की मशीन रख दी गई थी।

''कामिल को बुलाऊँ?'' उनको बैठाकर मादल ने पूछा।

''नहीं... बस थोड़ी देर में लौटूँगा। तुम जो ज़रूरी काम हो कर लो।'' मादल टाइपराइटर्स पर बैठे लड़कों के पास चला गया।

बार एसोसिएशन के लॉन पर धूप थी। कुछ वकील कुर्सियों पर बैठे मूँगफली चबा रहे थे। कुछ अख़बार पढ़ रहे थे। धर्मस्थल के अन्दर चारों ओर एक भगदड़ जैसी थी। आदमियों का हुजूम था, अर्थहीन शब्द थे। आकाश छोटा हो गया था। धरती सिकुड़ गई थी। अचानक उनका दिल घबराने लगा। उन्होंने कुछ गहरी साँसें

लीं। सर घुमा कर देखा। मादल पेड़ के नीचे एक लड़के के पास खड़ा हुआ टाइप किए काग़ज़ देख रहा था। उन्होंने उसे आवाज़ दी। उस तक नहीं पहुँची। उन्होंने पास गुज़रने वाले एक वकील से कहा। उसने मादल के पास जाकर उनकी तरफ़ इशारा दिया। मादल ने घूमकर उन्हें देखा। उन्होंने उसे पास बुलाया।

''मुझे ले चलो।'' उन्होंने कहा। उनका चेहरा पीला हो गया था। सर्दी में भी माथे पर पसीना था। नीम के नीचे मादल ने उन्हें सहारा देकर रिक्शे पर बैठाया। फिर साथ में बैठ गया।

''जल्दी।'' मादल ने रिक्शे वाले से कहा। वह पूरी ताक़त से पैडल मारने लगा।

जब रिक्शा घर पहुँचा तब तक आनन्द स्वरूप लगभग अचेत हो गए। थोड़ी थोड़ी देर में उनका बदन लहर लेकर काँपता था फिर ढीला हो जाता था। दरवाज़े से ही मादल ने चीख़ कर दाक्षायणी को आवाज़ दी। दाक्षायणी भागती हुई आई। दोनों सहारा देकर उन्हें अन्दर ले गए। बिस्तर पर लिटा दिया। मादल दौड़कर डाक्टर को बुलाने गया। दाक्षायणी ने उनके कोट के बटन खोल दिए। माथे का पसीना पोछा। उनका सीना रगड़ती हुई उन्हें पुकारने लगी। उन्होंने आँखें खोलने की कोशिश की फिर कुछ बुदबुदा कर चुप हो गए। कुछ देर में डाक्टर आ गया। उसने उनका शरीर छुआ फिर चुपचाप बाहर चला गया।

शाम को तारघर से कामिल ने दाक्षायणी की माँ के पड़ोस में फ़ोन करके उन्हें बता दिया। उन्हें आने में 20 घंटे लगते थे। दाक्षायणी ने उनकी प्रतीक्षा में देह रोकने से इन्कार कर दिया। कामिल ने सुबह तक सारा इन्तजाम कर दिया। मून और दूसरे लड़कों को बुला लिया। कुछ पड़ोसी थे। कुछ साथी वकील और शतरंज खेलने वाले थे।

जब सब तैयारी हो गई तब दाक्षायणी ने कामिल को एक ओर बुलाया।

''मैं मुखाग्नि दूँगी। मैं पूरे दाह कर्म करूँगी।'' दाक्षायणी ने कहा।

सनातन सभा की गाड़ी बुला ली गई। उस पर देह को रख दिया गया। उसी पर दाक्षायणी, कामिल, मादल और कुछ लोग बैठ गए। कुछ अपनी गाड़ियों से घाट पर पहुँच गए।

चिता को सजाया गया। मंत्रोच्चार के बीच दाक्षायणी ने चिता को अग्नि दी। जो शव के साथ आए थे, इधर-उधर सीढ़ियों पर पेड़ के नीचे बैठ गए। दाक्षायणी एक ओर कोने में चुपचाप सिमटी बैठी थी। उसके साथ मादल था। दो लड़के और थे। चिता के धुँए से बचने के लिए कामिल थोड़ी दूर जाकर सीढ़ियों पर बैठ गया। चुपचाप वह ऊपर जाते धुँए को देख रहा था। उसके पीछे कुछ लोग बैठे थे। कामिल

ने उनकी बातें सुनीं। कोई कह रहा था।

''बाबू आनन्द स्वरूप ने अपनी ज़िन्दगी में कुछ और किया या न किया हो, पर एक मामूली प्यादे को फर्जी ज़रूर बना गए। आज वही कचहरी का सबसे बड़ा भड़ुआ है।''

श्मशान घाट से वे सब एक टैम्पो में लौटे। कामिल और दाक्षायणी घर के अन्दर चले गए। मून और बाक़ी लड़के दरवाज़े से लौट गए।

अन्दर के कमरे में कुर्सी पर दाक्षायणी की माँ बैठी थी। साथ में एक आदमी था। उसके पैरों के पास सूटकेस रखा था।

दाक्षायणी माँ से लिपट गई। फूट-फूट कर रोयी वह। आनन्द स्वरूप की बेटी भी। कामिल एक कोने में खड़ा था। वह आदमी सर झुकाए बैठा था।

दाक्षायणी माँ से अलग हुई। चेहरा पोछा उसने फिर माँ का हाथ पकड़ कर अन्दर ले गई।

''यह यहाँ क्यों आया है?'' दाक्षायणी ने माँ से पूछा।

''मतलब?'' माँ ने दाक्षायणी को देखा।

''नहीं...यह यहाँ नहीं रहेगा। एक पल भी। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ।'' दाक्षायणी ने माँ के सामने दोनों हाथ जोड़े, ''तुम रहो। मैं तुम्हारी तन मन से सेवा करूँगी। जो कहोगी करूँगी। पर इस आदमी को यहाँ से जाना होगा... अभी।''

''तुम यह बात दो दिन बाद भी कर सकती हो। बीस घंटे का सफर करके आए हैं हम।''

''नहीं... तब बहुत देर हो जाएगी। अभी मैंने उनका दाह संस्कार करके स्नान भी नहीं किया है। मुँह में कल से अन्न का एक दाना भी नहीं डाला है। पूरी रात उनके शव के पास बैठी रही हूँ। सारा प्रबन्ध किया है। अभी मैं सब कुछ सह सकती हूँ। कर सकती हूँ। दो दिन बाद नहीं। तब मेरे अन्दर शक्ति नहीं रहेगी। मैं थक चुकी हूँगी। हो सकता है तब विरोध न कर सकूँ। इसलिए अभी, इसी समय उससे कह दो चला जाए।''

''यह नहीं होगा।'' माँ ने कहा, ''मैंने बहुत कठिनाई से उनके साथ जीवन को दुबारा शुरू किया है। मैं अपनी उमर किसके सहारे काटूँगी। कौन मेरा करेगा?''

''मैं करूँगी तुम्हारा। जीवन भर तुम्हारे चरण धोकर पिऊँगी।'' दाक्षायणी ने माँ का हाथ पकड़ा।

''नहीं... मैं नहीं चाहती तुम्हारे और जो बाहर खड़ा है उसके टुकड़ों पर पलूँ।

तुम्हारी रंगरेलियों को सुबह-शाम देखूँ। जैसा भी है, वह मेरा पति है। मेरा अपना घर है वहाँ। जो भी है वह, तुम्हारा पिता है।''

दाक्षायणी ने माँ का हाथ छोड़ दिया। माँ ने दाक्षायणी को देखा। दाक्षायणी घूम गई। माँ की तरफ़ उसने पीठ कर ली। माँ कुछ क्षण खड़ी दाक्षायणी को देखती रही फिर कमरे के बाहर निकली और उस आदमी के पास आई।

''चलो...हमें अगली गाड़ी पकड़नी है।''

वह कुछ नहीं बोला। उसने सूटकेस उठा लिया। माँ दरवाज़े से बाहर निकल गई। पीछे वह भी।

कुछ ही क्षण बाद दाक्षायणी कमरे में आई। कामिल चुपचाप दीवार से टिका खड़ा था। उसने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया। वह कामिल के पास आई, ''आज रात को तुम्हें यहीं रुकना होगा, पूरे जीवन की बातें अब तय करनी होगी न''

कामिल ने उसे अपनी बाँहों के घेरे में लेकर सीने से चिपका लिया।

दाक्षायणी चीख़ी और फिर उसके सीने पर सर पटकती हुई, फूट-फूट कर रो पड़ी।

दाक्षायणी नहाने चली गई थी। हाथ-मुँह धोकर कामिल बाहर से खाने का सामान बँधवा लाया था। कुछ सुबह पड़ोस के घर वाले दे गए थे।

सर्दियों के दिन थे। शाम छह बजे तक अन्धेरा हो गया था। जो कुछ थोड़े शोक प्रकट करने वाले आए थे, सभी चले गए थे।

घर के बाहर की सब बत्तियाँ बुझा कर दाक्षायणी ने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया। कमरे की बत्ती भी बुझा दी। बाहर से पूरा घर अब अन्धेरे में डूब चुका था।

अन्दर के कमरे में आकर कामिल और दाक्षायणी ने खाना खाया। खाने के बाद दाक्षायणी कामिल को अन्दर के कमरे में ले आई। कामिल बुरी तरह थका हुआ था। वह लेट गया। दाक्षायणी भी उसके पास लेट गई। कुछ ही क्षणों बाद उसने करवट लेकर अपनी ठोड़ी कामिल की छाती पर रख दी। अब उसकी आँखें कामिल की आँखों के पास थीं। उसने कुछ देर दो दिन बाद होने वाले हवन की बातें कीं। यह भी, कि किसको बुलाना है और फिर यह, कि हवन वही करेगी। उसने माँ की कोई बात नहीं की। बाबू आनन्द स्वरूप की कोई बात नहीं की।

कुछ देर बार थोड़ा ऊपर खिसक कर उसने अपनी आँखें कामिल की आँखों के बिल्कुल पास कर लीं। उसके घने काले बाले खुले थे। फिर उसने कामिल के

होंठों पर ऊँगली रखते हुए उसके पिता की मूर्ति के बारे में पूछा, फिर उसके भाई के बारे में, फिर पूछा कि यदि वे दोनों साथ रहना चाहते हैं तो क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वह और कामिल यहाँ, इस घर में आकर रहने लगें।

कामिल ने कोई उत्तर नहीं दिया। कामिल चुप था क्योंकि वह यह नहीं कह सकता था कि तुम मेरे घर चल कर रहो, जैसे रहा जाता है। कामिल के पास कोई घर नहीं था। कोठरी थी। उसमें भी दो इसलिए रह पाते थे कि जब एक सोता था तब दूसरा जागता था। वहाँ दाक्षायणी के लिए कोई जगह नहीं थी। बड़ा, तीन कमरों वाला घर छोड़ कर, सीढ़ी के ऊपर बने पाखाने में, जहाँ चार घरों के लोग एक साथ जाते हैं, वह दाक्षायणी को नहीं ला सकता था। दाक्षायणी कामिल को इस घर में आने के लाभ समझाती रही। सिलाई स्कूल जा सकेगी, कचहरी के सारे काम होंगे, उसके पिता की वह पूरी देखभाल कर लेगी। वह भी और निश्चिन्त होकर अपना काम कर सकेंगे। यहाँ उन्हें साफ़, ताज़ा हवा मिलेगी। काम करने के लिए अलग बड़ा कमरा मिलेगा। कामिल भी हर तरफ़ से मुक्त होकर अपना काम और बढ़ा सकेगा। दूसरे शहरों की जेलों के क़ैदियों के साथ भी सम्पर्क रख सकेगा। वे सब मिलकर एक छोटे, सुखी परिवार की तरह रहेंगे।

कामिल ने नींद में कुछ सुना, कुछ नहीं। बाहर चौकीदार की सीटी गूँज रही थी। रात के दस बज रहे थे।

''सुबह बात करें तो ?'' कामिल ने दाक्षायणी की आँखें चूम कर पूछा, ''तुम भी थकी होगी... सो लो।''

''ठीक है।'' दाक्षायणी उठ गई। ''मैं बाहर कमरे में सोती हूँ।'' उसने कामिल को गले तक लिहाफ से ढक दिया फिर कमरे से चली गई।

दाक्षायणी को नींद नहीं आई। कभी झपकी लेते, कभी करवट लेते, वह सोती जागती रही। उसने तीन बार घड़ी देखी। सर्दियों में रोशनी देर से होती थी। सुबह के पाँच बजे थे अभी। जैसे कोई पुकार रहा था किसी को। दाक्षायणी को बाहर कमरे के दरवाज़े पर कुछ खटखट सुनाई दी। शायद कोई चिड़िया हो, या फिर तेज़ हवा। पर फिर खटखट हुई। दाक्षायणी उठ गई। उसने पल्ले की आड़ से झाँक कर देखा। हल्की ओस से धुँधलाए शीशे में कोई अपना चेहरा चिपकाए खड़ा था। फिर खटखट हुई और उसी ने शीशे के पानी को हाथ से साफ़ किया। दाक्षायणी को काँच के पार एक चेहरा दिखा। वह कुछ क्षण देखती रही फिर दौड़ कर अन्दर के कमरे में सोते हुए कामिल को हिलाया।

"उठो...देख तो कौन है।"

कामिल हड़बड़ा कर उठ गया।

"कौन है?"

"मुझे लगता है तुम्हारे बाबू हैं।"

"वह कैसे होंगे और तुम्हें कैसे पता?"

"वैसे ही लम्बे घुँघराले बाल। बीच की माँग, जैसा तुम बताते हो... उठो जल्दी।"

कामिल पलंग से उतर कर तेज़ी से बाहर के कमरे में आया। दरवाज़े के काँच से चेहरा चिपकाए कोई अन्दर झाँक रहा था। वही थे। कामिल ने दरवाज़ा खोला।

कामिल ने हाथ बढ़ा कर उन्हें अन्दर कर लिया, "इतनी सर्दी में... क्यों?"

"अच्छा हुआ तुम मिल गए।" उन्होंने कामिल के चेहरे को छुआ, "मैं तो बहुत देर से खड़ा था... सोचा थोड़ी सुबह हो जाए तब जगाऊँ किसी को।"

"हुआ क्या?" कामिल ने उन्हें कमरे में लाकर कुर्सी पर बैठा दिया।

"कुछ नहीं हुआ। कुछ भी नहीं। बस बैठा हुआ काम कर रहा था। आज पार्वती के केशों की रचना की। बहुत देर सोचता रहा था पहले तो, कि क्या बनाऊँ? कपर्दिन, एक वेणी या दो वेणी। केश में कोई रत्न जड़ित आभूषण दूँ? फिर नई चीज़ बना दी। घोंसले पर बैठी कोयल का आभास देते केशबन्ध। तब तक आधी रात से ज़्यादा बीत चुकी थी। कोतवाली का दूसरा घंटा बजा था शायद। तभी अचानक लगा तुम किसी संकट में हो और मुझे बुला रहे हो। बस मैं बेचैन हो गया। मैं उठ गया। हाथ धोए। कमरे में देर तक घूमता रहा। पर बेचैनी कम नहीं हुई। तुम ज़रूर किसी संकट में आ गए हो! मुझे बुला रहे हो! मैंने कपड़े पहने और बाहर निकल आया। कहाँ ढूँढता तुम्हें? याद आया, तुमने मून के भोजनालय के बारे में बताया था। वहाँ चला गया। जेल के सामने रोशनी थी। कुछ लोग भी थे। उसी रास्ते से अन्दर गया। वहाँ कोई लड़का अन्दर सो रहा था। उसको जगाया तो उसने यहाँ का पता बताया। फिर अस्पताल के बाहर एक रिक्शा लिया तब आया यहाँ। क्या हुआ था? क्यों पुकार रहे थे मुझे?"

कामिल कुछ नहीं बोला। देखता रहा उन्हें, फिर उठ गया।

"चलो ... घर चलते हैं।" कामिल ने उनके कंधे पर हाथ रखा।

"हाँ... हाँ चलो।" वह भी उठ गए। कमरे के दरवाज़े तक आ गए।

"तुम रुको, मैं आता हूँ।" कामिल ने कहा फिर अन्दर कमरे में आया।

दाक्षायणी दरवाज़े के पीछे खड़ी सब सुन रही थी।

"अभी जाना होगा।" कामिल ने कहा उससे।

दाक्षायणी कुछ नहीं बोली। चुपचाप देखती रही कामिल को।

कामिल ने इधर-उधर देखा फिर दाक्षायणी जो ऊनी चादर लपेट कर सो रही थी, वह उठा ली उसने। दाक्षायणी को देखा उसने। वह पथरायी नज़रों से उसे देख रही थी। कामिल वापस बाहर के कमरे में आ गया।

उनके बदन को ऊनी चादर में लपेट कर अपनी बाँहों में ले लिया उसने फिर सहारा देकर कमरे के बाहर निकल गया।

कोहरे में वह हल्का-हल्का काँप रहे थे। कामिल ने अपना कोट भी उनको पहना दिया। कोट पहन कर वह रुक गए।

वे दोनों अब घर के बाहर सड़क पर आ गए थे।

''किसका घर है यह? कौन रहता है। और तुम क्या कर रहे हो यहाँ?'' बहुत कातर आवाज़ में पूछा उन्होंने। कामिल चुप रहा। वह फिर चल पड़े। कामिल साथ था। अचानक उन्होंने कामिल की हथेली अपनी हथेली में पकड़ ली। इतनी ताक़त से कि कामिल को लगा कि अगर वह पूरी शक्ति लगा दे तब भी उनकी पकड़ से अपने को छुड़ा नहीं पाएगा।

तीन

मैं भड़ुवा नहीं हूँ बिजन! तुम्हें याद है हमने एक जुलूस देखा था। लाल... दहकता हुआ। वे चेहरे, वे भिंची मुट्ठियाँ, हक़ माँगने की लड़ाई और अपने सपनों की तरफ़ चलने का एक निश्चित रास्ता। उन्हें किसी बात में कोई संदेह नहीं था। यही वह समय था जब हमारे अन्दर भी कोई संदेह नहीं था। मैंने तुमसे कहा था कि चलो इसमें शामिल होते हैं। तुम तैयार नहीं हुए थे। हम रुक गए थे। फिर जब तक धर्मस्थल नहीं गए, तब तक भी जीवन में कहीं कोई संदेह नहीं था। हमें हर तरफ़ से, जीवन के हर पक्ष के लिए, एक निश्चित, शंकाविहीन, स्थापित सत्य दिया गया था जिसका अनुगमन हमें करना था। धर्मस्थल में पहली बार सिखाया गया कि संदेह महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि सत्य उसी के बीच छुपा होता है। सत्य का लक्ष्य पाने के लिए संदेह पहली सीढ़ी है। संदेह अगर नहीं भी हैं तो उनका आवाहन करो, उनका वरण करो। उन्हें ढूँढो, जन्म दो। बाबू आनन्द स्वरूप ने यही सिखाया। उन्हें महताब जहाँगीर ने सिखाया। उन्हें धर्मशास्त्रों ने सिखाया था। बाबू ने भी यही कहा। रचना संशय में ही जन्मती है, परिपक्व होती है। अर्जुन सिर्फ़ संदेह करता है, शंकाए रखता है और फिर कृष्ण उन सबके बीच से ढूँढकर सत्य उसे देते हैं। बुद्ध को ज्ञान संदेह के बाद प्राप्त हुआ। बाद में भी बुद्ध से जब आनन्द ने पूछा कि सत्य क्या है, तो बुद्ध ने उसे भी संदेह में ढकेल दिया। पतझर की सूखी पत्तियों की तरह चारों ओर बिखरे हैं सत्य। सबने सिखाया कि जीवन में, सृष्टि में, अन्तिम कुछ नहीं हो सकता सिवाय मृत्यु के। कोई सत्य अंतिम नहीं। फिर धर्मस्थल में मैंने हर क्षण यही देखा। यह भी देखा कि संदेह के उस जगत में सत्य ढूँढे नहीं, ज़रूरत के अनुसार निर्मित भी किए जाते हैं। कानून की किताबों से, धर्माधिकारियों के ज्ञान और विवेक से, न्याय को संचालित करने वाले सूत्रों से, हमारी संसद से, संविधान से।

"मैं भी उन दिनों हर क्षण संदेह में रहने लगा। कई तरह के संदेह। जीवन को किधर जाना है? कौन सा रास्ता चुनूँ? सुख, आश्वस्ति और मनुष्य होने के गरिमा बोध के साथ कैसे जिऊँ? तुम जानते ही हो तुम्हारी तरह मेरे पास पहले से निश्चित, सुरक्षित, चमकदार तैयार करके रखा गया भविष्य नहीं था। मुझे अपने भविष्य का चुनाव ख़ुद करना था। मैंने उन दिनों बहुत पढ़ा बिजन। मैंने धर्मस्थल के स्वरूप और आत्मा को समझने की कोशिश की। लार्ड नार्थ का पूरा एक्ट पढ़ा। सुप्रीम कोर्ट की स्थापना पढ़ी। उसके पहले की अपनी व्यवस्थाएँ पढ़ीं जहाँ हिन्दुओं के पंडित और मुसलमानों के मौलवी अपनी-अपनी धर्म-पुस्तकों से 'व्यवस्था' और 'फतवा' देते थे और वारेन हेस्टिंग्स ने इस व्यवस्था को नष्ट न किए जाने के लिए इंग्लैंड की सरकार से कहा भी था। पर उसकी बात नहीं सुनी गई। सुप्रीम कोर्ट बना। मैंने इसके पहले चार जजों के बारे में पढ़ा। उनका जीवन चरित्र पढ़ा। नन्द कुमार का पूरा मुक़दमा पढ़ा, फाँसी पढ़ी। दर्शन शास्त्र पढ़ा... रचनात्मकता के द्वन्द्वों, संदेहों को पढ़ा। मुझे तब समझ में आया कि इस दुनिया में संदेहों के बीच कोई सत्य नहीं होता। संदेहों का घटाटोप सत्य को तलाशने के लिए नहीं, उसे छुपाने के लिए रचा जाता है। और इसे रचता कौन है? तब मनुष्य का, धर्मस्थल का, समाजों का, इस दुनिया का एकमात्र और सबसे बड़ा सत्य समझ में आया, कि यह पूरा जगत साफ़ तरह से दो हिस्सों में बँटा है। एक अखाड़े के अन्दर आपस में लड़ते, मरते गुलामों का और दूसरा अखाड़े के बाहर दर्शक दीर्घाओं में जवान लड़कियों के स्तनों पर बहती शराब पीते, उन्माद और उल्लास से हुँकारते हुए, मरते गुलामों को देखने वालों का। एक दुनिया उनकी है जिनके हाथों में गँड़ासे हैं और एक दुनिया उनकी है जिन्होंने चुपचाप अपनी गर्दनें इन गड़ासों के नीचे रख दी हैं। संदेह उनको है जो अखाड़ों के अन्दर हैं, उनको किसी बात में कोई संदेह नहीं जिनके हाथों में गँड़ासे हैं। अखाड़े के अन्दर लड़ने वालों में एक की मृत्यु दूसरे का जीवन है। एक की हत्या करना, दूसरे की अपनी मुक्ति है। इसी कारण से वे हर एक को अपना हत्यारा होने के संदेह से, संशय से, भय से देखते हैं। उनका पूरा जीवन इसी संदेह, संशय में बीतता है। उनके जीवन का मर्म, अर्थ, सत्य सब संदेहों के बीच

छुपा है। हर सुबह किसी दूसरे की हत्या करने के बाद उन्हें अपने जीवित होने का बोध होता है। इसीलिए इनके भय, इनके दुख कभी ख़त्म नहीं होते। ये जीवन भर किसी कँटीली बाड़ को फाँदकर दूसरी तरफ़ जाने की कोशिश करते रहते हैं। इस कोशिश में इनका रक्त लाल से पीला होने लगता है। इनकी नसें चिकनाई वाली खाल के अन्दर न होकर, बाहर दिखने लगती हैं। इनकी आँखों में मकड़ियों के जाले उतर आते हैं। अपनी बची खुची आत्माओं का अहसास इन्हें तब होता है जब कभी ये दर्द, यातना या विवशता से चीख़ते हैं। जानते हो बिजन, मनुष्य अहसान नहीं जख्म लौटाना चाहता है। वह भी जल्दी से जल्दी। एक बंद जगह में बहुत से इन्सानों को रख दो तो वे धीरे धीरे एक दूसरे से घृणा करने लगते हैं। सूखते जाते हैं। उनके मनोवेग, विचार बदल जाते हैं। जहाँ जितनी भी जगह है, साँस है, उस पर सब कब्जा चाहते हैं। वे एक दूसरे के लिए हिकारत, घृणा, क्रोध पाले हुए जीने लगते हैं। दूसरे के जीवित रहने पर क्षुब्ध होते हैं। वे बीमार आत्माओं वाले ऐसे लोगों में बदल जाते हैं जो हर दिन के अपने जीवन मूल्य, नैतिकता स्वयं गढ़ते हैं और यह सिर्फ़ किसी दूसरे का रक्त पीकर जीवित रहने में ही संभव होती है। तुम परिस्थितियाँ पैदा करते चलो, लोग कीड़ों में बदलने को तैयार हैं। अखाड़े के बाहर बैठे लोग इस सत्य को जानते हैं। वे एक तंग पिजरे में इन गुलामों को बन्द रखते हैं। गिनी हुई रोटियाँ फेंकते हैं जो हमेशा कम होती हैं। रोटियों की प्रतीक्षा फिर उन्हें किसी की हत्या करके पाना और फिर रोटियों की प्रतीक्षा। अखाड़े के अन्दर जीने वालों की चेतना में इतना ही रह जाता है। पिंजरे से मुक्त होने का स्वप्न भी उन्हें नहीं आता। उनकी चेतना, तर्क, बुद्धि, संघर्ष-क्षमता, सामूहिक शक्ति, उनकी जर्जर आत्माओं के अन्दर सूख चुके बीजों की तरह रहती है। यह धर्मस्थल भी ऐसा ही एक पिंजरा है बिजन। मैंने इसमें अपना भविष्य चुन लिया है। मुझे अखाड़े के अन्दर नहीं, बाहर होना है। दर्शकदीर्घा में स्तनों पर बहती शराब पीने वालों के बीच। किसी भी संदेह, संशय से परे। मुझे आनन्द स्वरूप, महताब जहाँगीर या कल बाबू का जीवन और मौत नहीं चाहिए। मुझे वह जीवन और उसका वह सत्य चाहिए जो विशाल पंख फैलाए घाटियों में उड़ते हुए गरूड़ का होता है। जो हिंसा, रक्त, शक्ति, क्रूरता,

वर्चस्व, कामुकता और वैभव की वास्तविक आदम लालसाओं का
होता है। जो ब्रूटस की सन्तानों को क़त्ल करते रहने का होता है।
जहाँ मिले जैसे मिले।
मैं भड़ुवा नहीं हूँ बिजन...बस अखाड़े के दूसरी ओर चला गया हूँ।

मुन्नी का नाम कमलेश कुमारी कौशिक था। बाद में धर्मस्थल में वह 'श्री के' के नाम से जानी गई।

शिवालय की जिस चक्की पर कामिल आटा पिसाता था, वह गंगू के पिता पंडित शिवकुमार की थी। कई तरह के काम करने और छोड़ने के बाद, उन्होंने अन्ततः बैंक से कर्जा लेकर चक्की लगा ली थी। कामिल को कई बार गंगू ही चक्की पर बैठा हुआ मिलता। वही गेहूँ लेता, आटा देता, पैसा लेता। गंगू जब काम करता, कामिल चुपचाप उसे देखता। वह दुबला पतला, लड़कियों के से चेहरे वाला था। उसका रंग साफ़ था और हर समय हँसता था।

सत्तर का दशक छात्र संघों के लिए सुनहरे दिनों का समय था। छात्र नेता से होता हुआ रास्ता देश की राजनीति तक जाता था। राजनीतिक दल अपने-अपने लड़के यूनियन के चुनाव में तैयार करते थे। बड़े कालेज की यूनियन के अध्यक्ष या सचिव का दबदबा शहर के बड़े अधिकारियों पर होता था। एक क्षण में वह सैकड़ों छात्र जमा करने की ताक़त रखता था। छात्र चुनावों में हिंसा होना सामान्य बात थी। वर्चस्व की इस लड़ाई में हिंसा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। अप्रत्यक्ष तरीक़े से यह बात भी काम करती थी कि किस छात्र नेता के साथ, शहर का कौन सा बड़ा गुंडा दिखता है और कौन अपने साथियों के बीच सबसे ज़्यादा हथियार रखता है।

सन चौहत्तर में डिग्री कालेज में कामिल का एक दोस्त अध्यक्ष पद के लिए खड़ा हुआ। समय मिलने पर कामिल उसके साथ प्रचार में घूमता था। उसके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी के साथ कामिल ने तब गंगू को कई बार देखा था। गंगू कालेज का छात्र नहीं था। पूछने पर कामिल के दोस्त ने बताया कि यह शहर का नया उभरता हुआ गुंडा है। शंकरिया का हाथ इसकी पीठ पर है। दो बड़े क़त्लों में इसका नाम आया है। इसके कलेजे, गुर्दे और जीदारी की चर्चा होती रहती है। प्रचार के दौरान गंगू जब कामिल से मिला तो दोनों एक दूसरे को देख कर मुस्कुराए। हाथ भी मिलाया।

पंडित शिवकुमार ने चक्की के लिए बैंक से जो क़र्ज़ लिया था उसकी वह एक भी किश्त नहीं चुका पाए। बैंक ने उनको वसूली का नोटिस दिया। धर्मस्थल

में वह नोटिस लिए किसी वकील की तलाश में घूम रहे थे, तब उन्हें कामिल दिखा। कामिल को उन्होंने अपनी परेशानी बतायी। कामिल ने उनके लिए एक वकील करवा दिया। मुक़दमे के ही दौरान अक्सर उनकी और कामिल की मुलाक़ात होने लगी। पंडित शिवकुमार जल्दी ही चक्की और मुक़दमे से ऊब गए।

चक्की में रोज़ टूट-फूट होती थी। आटा ग़ायब हो जाता था। घर में ही ज़्यादा खपने लगा था। धीरे-धीरे चक्की में पिसाई करना नुकसान का काम बन गया। चक्की उन्होंने गंगू और अपने दूसरे दो बेटों के जिम्मे छोड़ दी। दो बेटों में एक शहर के पुराने मकान की दुछत्ती में बुकनू बनाकर पंसारियों की दुकान पर देता था। दूसरा शहर से थोड़ी दूर चार कोल्हुओं वाली तेल मिल में नौकरी करता था और छुट्टियों में घर आता था। चक्की का काम मुख्य रूप से गंगू के पास आया। उसके मुक़दमे में कचहरी जाने का काम भी। इसी सिलसिले से अब गंगू की कामिल से जल्दी जल्दी मुलाक़ातें होने लगीं। उनमें परिचय गाढ़ा होता गया। कामिल को गंगू इसके अलावा भी कचहरी में दिखता रहा। कई बार किसी अपराध के सिलसिले में हथकड़ी में जकड़े लड़के की मदद करता, कभी किसी मुक़दमे में शंकरिया के साथ।

एक दिन गंगू ने मून के भोजनालय में चाय पीते हुए कामिल को बताया कि उसकी सगाई एक साल पहले हो चुकी है। वह अगले महीने शादी कर रहा है। वह तो ज़्यादा पढ़ाई नहीं कर पाया पर उसकी पत्नी पढ़ी-लिखी है। उसे इंग्लिश में एक प्रेम पत्र लिख चुकी है जिसे गंगू समझ नहीं पाया। उसे उसने वैसे ही रख लिया है और सुहागरात में उसी से पढ़वा कर अर्थ पूछेगा। उसी बातचीत के दौरान कामिल ने गंगू को अपने दो भाइयों के बारे में बताया। भाई के कमरे के ताले के बारे में बताया। गंगू ने कामिल से उसके भाई का पता पूछा। कामिल ने पता नहीं दिया। गंगू ने कामिल से कहा कि जिस दिन उसका मन हो, गंगू को पता बता दे। उसका भाई ख़ुद ही आकर ताला खोल जाएगा। मून के भोजनालय में उस दिन अनायास ही कामिल और गंगू के बीच आत्मीयता का मजबूत तार जुड़ गया।

इस बात के ठीक छह दिन बाद शहर में दो गिरोहों की लड़ाई हुई। आपस में बम भी चले। उस बमबाजी में गंगू का एक पैर उड़ गया। पाँच महीने गंगू अस्पताल में रहा। उसका एक पैर जांघ पर से काट दिया गया। जिस लड़की से गंगू की शादी हो रही थी उस लड़की ने अस्पताल में गंगू की पूरी देखभाल की! उसे उसके घर वालों ने बहुत समझाया कि तुम अब यह शादी मत करो। वह नहीं मानी। उसका एक ही तर्क था कि अगर शादी के बाद यह होता तब आप क्या कहते? इसका उत्तर कोई नहीं दे पाता था। गंगू के अस्पताल से घर आने के तीन हफ्ते बाद लड़की ने गंगू से शादी कर ली। लड़की का नाम कमलेश कुमारी कौशिक उर्फ मुन्नी था। वह लम्बी, पतली

थी। बेहद साफ़ रंग और अच्छे नाक-नक्श वाली सुन्दर लड़की थी।

कामिल गंगू से मिलने तीन बार अस्पताल गया। गंगू उसे देखकर मुस्कुरा देता था। उसके चेहरे पर कोई दुख, कोई पश्चाताप नहीं था। पाँच महीनों में कामिल ने कचहरी में चक्की के मुक़दमे की पूरी देखभाल की। गंगू की शादी में कामिल भी गया। गंगू ने एक टाँग से बैसाखी के सहारे पूरे सात फेरे लिए।

शादी के बाद गंगू चक्की पर बैठने लगा। पंडित शिवकुमार ने चक्की को लगभग छोड़ दिया था। वह अब गाँव से शुद्ध घी लाकर शहर के कुछ बड़े घरों में देते थे। दूसरे दोनों लड़कों ने भी चक्की से अपना सम्बन्ध पूरी तरह ख़त्म कर लिया था। मुक़दमे का ख़र्च, चक्की का नुकसान, और पिसाई की चिकचिक से अलग, बुकनू बनाने वाले ने उसी दुछत्ती में मसाले पीसने का काम भी शुरू कर दिया था। नौकरी करने वाला लड़का रोडवेज में बस कंडक्टर होकर अक्सर लम्बी ड्यूटी के बहाने घर से दूर रहने लगा था। चक्की अब गंगू और मुन्नी के पास थी। दोनों ने उसे अपने तरीक़े से फिर शुरू किया।

चक्की में गंगू को बाहर के भी बहुत से काम करने होते थे। धीरे-धीरे उसने एक पैर से साइकिल चलाने में महारत हासिल कर ली। बैसाखी या फिर बिना बैसाखी के, वह चक्की में घूम-घूम कर एक पैर पर कूदता हुआ काम करता। जो गेहूँ आता उसे तौलता, पिसा हुआ आटा तौल कर देता। चक्की चलाता, गेहूँ पीसता। घरों से साइकिल पर पीछे बाँध कर गेहूँ की बोरी ले आता, पिसा आटा पीठ पर लादकर सीढ़ियों पर बैठते हुए तीसरी मंज़िल तक पहुँचा देता। मुन्नी को साइकिल में पीछे बैठाकर घुमाता, सिनेमा दिखाने ले जाता। मुन्नी भी चक्की पर बैठती थी, पर उसका मन चक्की में नहीं लगता था।

गंगू ने एक दिन कामिल को बताया कि मुन्नी बी.ए.पास है और आगे पढ़कर कुछ बड़ा काम करना चाहती है। कामिल ने गंगू को सलाह दी कि मुन्नी को कानून की डिग्री दिलवा देते हैं। इस परीक्षा को पास करके डिग्री पाना बहुत आसान काम है। फिर वह भी यहाँ दूसरे वकीलों की तरह बस्ता खोल लेगी। उसका काम शुरू करने और जमाने में कामिल पूरी मदद कर देगा। बंद होती हुई चक्की के लगभग हारे हुए मुक़दमे के बाद, गंगू भी बस्ते में बैठकर मुन्नी की मदद कर सकेगा। पैसे भी आने लगेंगे। इज्जत भी बढ़ेगी। कामिल ने इस काम की पूरी जिम्मेदारी ली। मुन्नी ने शहर के लॉ कालेज में दाखिला ले लिया। वहाँ शाम की कक्षाएँ होती थीं। सुबह मुन्नी चक्की और घर का काम देखती, शाम को कालेज जाती।

एक दिन गंगू मुन्नी को साइकिल पर पीछे बैठाकर धर्मस्थल आया। उसने कामिल को बताया कि वह अकेले साइकिल से वैष्णव देवी दर्शन करने जा रहा

है। मुन्नी उसको रोक रही थी। कामिल ने भी समझाया। पर गंगू संकल्प कर चुका था। बिना किसी को बताए उसने इस योजना पर बहुत आगे तक काम भी कर लिया था। शासन से विकलांग होने के सारे प्रमाण पत्र ले चुका था। वह शहर के डी.एम.से मिल चुका था। उसे अपना निश्चय बताया था। गंगू के एक पैर से साइकिल चला कर वैष्णव देवी जाने के संकल्प, साहस और दृढ़ता से डी.एम. बहुत प्रभावित हुआ। उसने गंगू की बहुत सराहना की और अपनी मुहर और दस्तखत से एक विस्तृत परिचय पत्र उसे दिया। उस पर यह विशेष टिप्पणी व निर्देश था कि किसी भी शहर, क़स्बे, गाँव जहाँ भी यह रुकना चाहे, वहाँ के डी.एम., थाना इंचार्ज, पंचायत प्रमुख से यह अपेक्षा की जाती है कि वह गंगू के रात के रुकने व भोजन की पूरी व्यवस्था सुनिश्चित करेगा। डी.एम. ने यह भी लिखा कि एक विकलांग के इस दृढ़ संकल्प व अतुलनीय साहस के कार्य में सहयोग न करने वाले की भूमिका को गम्भीरता से संज्ञान में लिया जाएगा और निश्चित रूप से मानवीयता व मानवाधिकार के कानूनों व नैतिकता के अन्तर्गत, उसे कुछ असुविधाजनक प्रश्नों व परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है।

एक हवा भरने का पम्प, गले में एक झोला और बैसाखी को साइकिल पर बांध कर एक पैर के साथ गंगू वैष्णव देवी चला गया। मुक़दमे की दो तारीख़ों में मुन्नी अकेली आई। कामिल ने दोनों तारीख़ें बढ़वा दीं।

एक महीना बाईस दिन बाद गंगू लौटकर आ गया। वह मुन्नी को साथ लेकर धर्मस्थल आया। कामिल के लिए वह वैष्णव देवी का प्रसाद लाया था। उसने बताया कि पूरी यात्रा में उसे सब जगह, हर तरह की सुविधा दी गई। गाँव वालों ने उसे अपने घरों में ठहराया। उसके पहुँचने से पहले ही अगले गाँव में सूचना पहुँच जाती थी कि एक पैर से साइकिल चला कर माँ वैष्णव देवी के दर्शन करने वाले आ रहा है। अधिकारी हलकों में भी उसे सब जगह सहयोग मिला। आगे के लिए परिचय पत्र मिलते रहे। गंगू ने कामिल को बताया कि इस व्यवस्था को देखने के बाद वह अब सोच रहा है कि मुन्नी की वकालत शुरू हो जाने के बाद वह इसी तरह एक दिन भारत परिक्रमा पर निकल जाएगा।

कुछ दिन बाद चक्की का मुक़दमा गंगू हार गया। बैंक ने अपनी मुहर लगाकर चक्की सील कर दी। मुन्नी के पास अब वकील बन कर वकालत करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। उसने मेहनत और लगन से पढ़ाई की। एक बड़े मंदिर के उसके पुजारी पिता ने उसकी पढ़ाई और घर दोनों का ख़र्च उठाया। तीन साल बीतने पर मुन्नी को कानून की डिग्री मिल गई।

एक रात धर्मस्थल के असंख्य बस्तों के बीच, कूड़े के ढेर के पीछे एक ख़ाली

सँकरी जगह पर कुछ ईंट चुनवा कर दस बाई छह फुट की एक जगह घेर ली गई। उसके अन्दर एक कुर्सी, एक छोटी मेज़, दो प्लास्टिक के स्टूल किसी तरह रख दिए गए। उसकी बिना प्लास्टर की ईंटों वाली दीवार पर एक बोर्ड लटका दिया गया। कमलेश कुमारी कौशिक एडवोकेट बी.ए. एल.एल.बी।

कामिल ने शुरू में यही कोशिश की थी कि मुन्नी को किसी बड़े और अनुभवी वकील के साथ सहायक के तौर पर रखवा दे। वह कुछ काम सीखेगी। कुछ लोगों से उसका परिचय होगा। पर गंगू का बमकाण्ड और उसमें एक पैर उड़ने के बाद, एक पैर से साइकिल चलाते हुए घूमने के कारण वह शहर में मशहूर था। बम केस अभी अदालत में चल रहा था। शंकरिया, गंगू और कुछ लोग अभी तारीख़ों पर आते थे। कोई बड़ा वकील मुन्नी को सहायक रखने को इच्छुक नहीं था। अलग वकालत शुरू करने पर भी मुन्नी का काम नहीं चला। मुवक्किल मुन्नी से बात करने में असहज महसूस करता। अदालती मकड़जाल को यह लड़की तोड़ पाएगी, इस पर विश्वास नहीं करता। न्यायाधीशों के साथ रुपए की बात कर पाएगी, यह मानने को तैयार नहीं होता।

मुन्नी के बस्ते पर मुवक्किल नहीं आए। धर्मस्थल का यह अलिखित नियम था कि यदि एक बार असफल होने की चिप्पी लग गई, तो किसी भी अदालत में, कोई न्यायाधीश क्या पेशकार तक भी महत्त्व नहीं देता था। झूठे गवाह, जमानतगीर और छोटे-मोटे गाड़ियों के चालानों को छुड़ाने के धंधे के बाद उसकी कानून की दुनिया ख़त्म हो जाती थी।

गंगू शुरू में बहुत उत्साह के साथ मुन्नी को साइकिल पर बैठा कर धर्मस्थल लाता। मुन्नी के बस्ते का ताल खोलता। अन्दर कुर्सी और मेज़ साफ़ करता। मुन्नी तब तक लोहे के बक्से से काला कोट निकाल कर पहन लेती। गंगू बाहर एक स्टूल डालकर बैठ जाता। उधर से गुज़रने वाले हर आदमी को मुवक्किल समझ कर उम्मीद से देखता। लोग बोर्ड पढ़ते, एक नज़र गंगू को देखते फिर किसी दूसरे वकील के बस्ते में घुस जाते। कामिल भी अक्सर मुन्नी के बस्ते पर आता। उसने दो बार मुवक्किल भी भेजे। उसमें एक में गाड़ी के चालान का जुर्माना देकर काग़ज़ छुड़ाना था। दूसरे में एक हलफ़नामा बनवाना था।

कई महीनों तक देखने के बाद मुन्नी को समझ में आया कि इस तरह वह धर्मस्थल के भँवर को पार नहीं कर पाएगी। चक्की बन्द हो चुकी थी। पुजारी पिता भी दो बार आरती करते हुए बेहोश हो चुका था। उसे मंदिर से हटाए जाने की बात शुरू हो गई थी। दूसरों का, ख़ासतौर से कामिल से लिए रुपयों का क़र्ज़ भी बढ़ता जा रहा था। एक दिन वे तीनों बैठे तो कामिल ने इस पूरे मामले को एक दूसरी

तरह से देखा। उसने थोड़ा और समय बीतने के बाद मुन्नी को नोटरी बनवा दिया। उसके नाम के बोर्ड के नीचे एक छोटा बोर्ड और लटक गया। 'यहाँ हर तरह के हलफ़नामें बनाए जाते हैं।'

मुन्नी के पास फिर भी लोग नहीं आए। तब एक दिन गंगू ने कामिल से कहा कि लोग हमारे पास नहीं आते तो हम लोगों के पास जा सकते हैं। कामिल को यह बात समझ में आई। तब उसने एक पूरी योजना बनाई। योजना थी हलफ़नामें बनाने के एक—लम्बे चौड़े तंत्र को विकसित करना। इस योजना का समय लगभग वही था जब कामिल ने बिजन को लिखा था कि वह भड़ुवा नहीं है, बस अखाड़े के दूसरी ओर चला गया है, जब गंगू ने गम्भीरता से भारत परिक्रमा पर सोचना शुरू कर दिया था, जब दाक्षायणी ने कामिल से अपने दोनों के जीवन और भविष्य पर बात करना बन्द कर दिया था, जब कामिल के पिता मूर्ति बनाते-बनाते उच्च रक्तचाप के मरीज़ हो गए थे, मून अपने भोजनालय में तीन नई मिठाइयाँ बनाने लगा था, जब मादल ने कचहरी में टाइपिंग का पूरा काम सम्हाल कर उसका हिसाब कामिल को नहीं, दाक्षायणी को देना शुरू कर दिया था, जब धर्मस्थल की पुरानी इमारतें तोड़कर ऊँची कई मंज़िला इमारतों का नक़्शा पास हो चुका था, जब बेरोज़गार वकीलों के बस्तों में देर रात तक जुए की फड़ जमने लगी थी, और पकड़ कर लायी गई हबूड़ों की बस्ती की लड़कियों को अपने मुक़दमे के कानूनों को समझने-समझाने के लिए देर रात तक बस्तों में रोका जाने लगा था, जब धर्मस्थल के अन्दर जुलूस आना बन्द हो चुके थे, नुक्कड़ नाटक किस्सों में चले गए थे, उनकी जगह जोगी, मदारी, पागल, हिजड़े, पुलिस के पीछे चलती वेश्याएँ, चूर्ण और स्तम्भन की गोली बेचने वाले बंजारे, धर्मस्थल की बची खुची संकरी सड़कों पर घूमने लगे थे, जब मुक़दमों के फ़ैसलों को पक्ष में लिखवाने वाले दलाल कई शक्लों में पहचाने जा चुके थे, जब अदालतों में बने लकड़ी के कटघरों की नीवों को चूहों ने कुतरना शुरू कर दिया था, बार एसोसिएशन की लाइब्रेरी की असंख्य कानूनी किताबों पर धूल की पर्त मोटी होती जा रही थी, जब लॉ कालेज की डिग्रियाँ बेरोज़गारों को बहुत सस्ते में मिलने लगी थीं, जब दूसरे शहर के आए क़ैदी कामिल से अपने लिए लड़कियों का इन्तज़ाम करने के लिए भी कहने लगे थे, जब धर्मस्थल की कई पुरानी इमारतों की छतों पर हरी काई में घास उगने लगी थी, जब गरुड़ उसके ऊपर खुले, विस्तृत आकाश में अपने विशाल पंख फैलाए चौकन्नी सी आँखें लिए चक्कर लगाने लगा था, जब धर्मस्थल के तीनों कुओं का पानी सूख गया था, जब धर्माधिकारियों के चैम्बरों में, अदालतों के कमरों में धूप आने के रास्ते बन्द हो गए थे। हल्के-फल्के उजाले और सीलन में फुसफुसाहटों में बातें करते काले कोट बिना फर्श पर पंजे रखे इधर से उधर घूमने लगे थे। प्रेतों की रहस्यमयी दुनिया में भय

और संदेह के स्तूप रचते हुए, जिनके नीचे कहीं धर्मस्थल का, न्याय का, लोकतंत्र का वह छलावा होता, जिसे पकड़ने के लिए बाहर नंगे बदन, घुटने मोड़कर बैठा, हथेलियाँ जोड़कर ठिठुरता हुआ, भारतीय संविधान में दी गई सर्वोच्च सत्ता वाला नागरिक होता। यह समय सन 1981 था।

कामिल जब पहुँचा गंगू मुन्नी के बस्ते का ताला खोल चुका था। किसी तरह जगह बना कर खड़ी की गई लोहे की एक अलमारी के अन्दर से वह रेमिगंटन के पुराने पोर्टेबल टाइपराइटर बाहर खुली जगह पर पड़े तख्त पर रख रहा था।

"मुन्नी कहाँ रह गई?" कामिल ने पूछा।

"मंदिर से आती होगी। आज का दिन लम्बी पूजा का दिन होता है।"

"शंकरिया के केस का फ़ैसला आज है?"

"हाँ।" गंगू ने आख़िर टाइपराइटर तख्त पर रख दिया। वे सब सात टाइपराइटर थे।

"केस छूटा हुआ है।"

"शंकरिया से इधर कुछ बात हुई?"

"हाँ...अंदर तो मिलता ही है। कह रहा था यह मुक़दमा छूटे तो तुम यहाँ बैठना छोड़ दो। तुम्हारा पैर गया है, गुर्दा और जिगर तो वैसा ही है। ट्रकों से वसूली का हिसाब सम्हाल लेना। सब बैठे का काम है। मैंने मना कर दिया। कह दिया मुक़दमा छूटने और मुन्नी का पूरा काम जम जाने के बाद भारत परिक्रमा पर जाऊँगा।"

कामिल हँसा। तब तक मुन्नी भी आ गई। उसे आता देखकर आसपास की जगहों पर बैठे सात लड़के भी बस्ते पर आ गए।

मुन्नी बस्ते में आई। पीछे कामिल भी आया। अपनी कुर्सी पर बैठकर उसने लोहे का बक्सा खोला। उसमें से कमलेश कुमारी कौशिक की सात मुहरें निकालीं। कोर्ट के टिकट निकाले, स्टैम्प पेपर निकाले।

"लो।" उसने कामिल को मुहरें, स्टैम्प पेपर और टिकट दे दिए।

कामिल मुहरें और टिकट लेकर बस्ते से बाहर आ गया। उन लड़कों ने तब तक एक-एक टाइपराइटर पकड़ लिया था। कामिल ने हर एक को मोहर दी। रुपए जोड़ कर स्टैम्प पेपर दिए। गिन कर चालीस चालीस टिकट दिए। लड़कों के पास साइकिलें थीं जो दूर पेड़ों से टिकी खड़ी थीं। उन्होंने मोहर, टिकट, स्टैम्प पेपर एक थैले में या कन्धे पर टँगे जेब वाले बैग में रखे। टाइपराइटर उठाया, साइकिल के कैरियर पर बाँधा और निकल गए।

ये लड़के वही थे जो आज भी किन्हीं टाइप स्कूलों में, "ए क्विक ब्राउन फॉक्स जम्प्स ओवर दि लेजी डाग" सीख रहे थे या सीख चुके थे। ये सातों शहर की उन सात जगहों पर जाते थे जहाँ हलफनामों की ज़रूरत होती थी। रोज़गार कार्यालय, नगर महापालिका, विश्वविद्यालय, बिजली घर, रेन्ट कन्ट्रोल ऑफ़िस, जल संस्थान, जिला उद्योग केन्द्र और ऐसे ही दूसरे दफ्तर। किसी भी चबूतरे पर या पेड़ के नीचे या फर्श पर ईंट डालकर, या वहीं किसी चेन से बंधी अपनी कुर्सी, मेज़ खोल कर टाइपराइटर रख लेते। टाइपराइटर से बँधी लकड़ी की छोटी सी पट्टी 'यहाँ हर तरह के हलफ़नामे बनते हैं' लटका लेते। दिन भर हलफनामे टाइप करते थे। कमलेश कुमारी कौशिक की मोहर लगाते थे। उसके दस्तखत बनाते थे। जितने टिकट उनको मिलते थे, उतने का हिसाब प्रति हलफनामा बीस रुपए की दर से शाम को मुन्नी को ला कर दे देते थे। टाइपराइटर जमा कराते, मुहर वापस करते। हर लड़का औसत तीस हलफ़नामे बना देता था। हर हलफनामा पर तीन रुपए उसे मिलते थे। ये लड़के कामिल लाता था। टाइपराइटर, मुहर, टिकट, स्टैम्प पेपर कामिल की जिम्मेदारी थी। मुन्नी का नाम और मोहर चलती थी। दस्तखत चलते थे जिन्हें बनाने का गुर कामिल ने उन लड़कों को सिखा दिया था। शाम को मुन्नी डायरी में अपना और कामिल का हिसाब लिख लेती थी। प्रति हलफनामा चार रुपया कामिल, चार रुपए मुन्नी। धर्मस्थल के अन्दर बनने वाले हलफनामों के पैसे मुन्नी के अपने होते थे। कामिल के सम्पर्क वाले वकील, क़ैदी, पुलिस, टाइपिस्ट, मुन्नी के बस्ते पर हलफनामा बनवाते। मुन्नी के बस्ते के पास बैठा एक लड़का टाइप करता रहता, मुन्नी मोहर मारती दस्तखत करती। गंगू पैसे लेता, हिसाब करता।

"मैं चलूँगा।" लड़कों के जाने के बाद गंगू ने बैसाखी कन्धे के नीचे टिक कर मुन्नी से कहा, "आज फ़ैसला है थोड़ा जल्दी पहुँचना है।"

"मैं चलूँ?" कामिल ने पूछा।

"नहीं।"... गंगू ने सर हिला दिया। बैसाखी खटकाता एक पैर पर कूदता हुआ वह चला गया।

मुन्नी ने मेज़ की दराज खोलकर काग़ज़ों का एक बंडल निकाला। ये उन हलफ़नामों की प्रतिलिपि थी जो पिछले दिन लड़कों ने बनाए थे। कामिल लड़कों के बनाए हलफ़नामों पर एक नज़र ज़रूर डालता। कुछ को पढ़ता भी। अगली बार लड़कों को कुछ हिदायतें भी देता।

कामिल ने हलफ़नामें लेकर सरसरी निगाह डाली। दसवें हलफनामें पर वह रुक गया। पुलिस अधीक्षक को शपथ पत्र पर एक लड़की ने बयान दिया था कि आज़ाद नगर के सिलाई स्कूल में सिलाई सीखने वाली लड़कियों पर, परोक्ष रूप

से वहाँ से सम्बन्धित मादल नाम के व्यक्ति द्वारा दबाव डाला जाता है, कि वे उसके वे व्यक्तिगत काम भी करें, जो किसी न किसी रूप में उनकी देह के यौन शोषण की शुरुआत होते हैं। इसमें आगे लिखा गया था कि इस सिलाई स्कूल की मुख्य संचालिका दाक्षायणी नाम की एक लड़की है जो सम्भवत: मादल के इस काम के बारे में नहीं जानती, क्योंकि पूरा काम मादल और उसकी बहन ही देखते हैं। हलफ़नामें के साथ एक पत्र भी था जिसमें अनुरोध किया गया था कि इस बात की गुप्त जाँच कराकर सिलाई स्कूल की आड़ में चलाए जाने वाले देह के व्यापार को रोक जाए व मादल के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाए। हलफ़नामें को सत्यपित करते हुए कमलेश कुमार कौशिक नोटरी की मुहर, दस्तखत थे।

कामिल ने वह हलफ़नामा अलग करके मुन्नी की ओर बढ़ा दिया।

मुन्नी ने हलफ़नामा पढ़ा और भौंचक्की सी कामिल को देखने लगी।

''अब?'' कुछ देर बाद पूछा उसने।

''बात करता हूँ जाकर।'' कामिल ने हलफ़नामा मुन्नी से ले लिया। मून के भोजनालय में आया वह। घुसते समय उसने शंकरिया को देखा। तीन आदमियों के साथ कोने में बैठा वह चाय पी रहा था। उसने भी कामिल को देख लिया। उसने कामिल को इशारा किया। कामिल उसके पास आ गया।

''आज ख़त्म हो जाएगा। सब छूट जाएँगे।'' शंकरिया बोला।

''गंगू बता रहा था।'' कामिल ने कहा, ''वह अदालत ही गया है।''

''मैंने उससे कई बार कहा कि उसकी टाँग जाने का हमें बहुत दुख है। ट्रकों की वसूली पर आ जाए। वह मानता नहीं। तुम समझाओ। यहाँ आकर दिन भर स्टूल पर बैठा रहता है। सड़ता चला जाएगा।''

''मैं बात करूँगा।'' कामिल ने कहा।

''मेरे कुछ लड़के कल जेल पहुँच गए हैं। मैं तुम्हें बताऊँगा उनके बारे में। एक की बहन की शादी है दो महीने बाद। वह दो घंटे के लिए बाज़ार जाना चाहता है। ऐसा कर दो कि पहली पेशी सुबह हो जाए और फिर दूसरी पेशी शाम को। तब तक वह काम ख़त्म कर लेगा।''

''कौन सा काम?''

''कुछ दुकानदारों को समझाना है। वह जेल गया तो साले आँखें दिखाने लगे हैं।''

''कर दूँगा...पर वह कोई काण्ड न करे।''

''नहीं... सिर्फ़ एक हूल देगा बस।''

कामिल ने हाथ हिलाया और मून के पास लौट आया। उसने मून को जल्दी से कुछ समझाया। अपने एक लड़के को उस दिन के क़ैदियों को बाँटने वाले रुपए के बारे में बताया और बाहर निकल आया।

कामिल ने एक पुरानी येजदी ख़रीद ली थी। हलफ़नामे को उसने मोड़कर अपनी जेब में रखा और मोटर साइकिल लेकर धर्मस्थल से बाहर निकल गया।

उसके बाबू जिस सुबह दाक्षायणी के घर आए थे उसके बाद दाक्षायणी ने कभी कामिल से अपने और उसके जीवन के बारे में कोई बात नहीं की। कामिल ने कभी उसे हाथ पकड़कर रोकना चाहा तो दाक्षायणी ने हाथ छुड़ा लिया। आज मन नहीं है... व्रत है...काम बहुत है... दिन ठीक नहीं है... तबीयत ख़राब है...। कामिल के मिलते ही वह पहला सवाल पूछती, ''कैसे हैं तुम्हारे पिता?''

''ठीक हैं।''...कामिल कहता। वह दाक्षायणी की आवाज़ की तल्खी महसूस करता।

''और उनकी मूर्ति?''

''बस... यूँ ही चल रही है... रात को एक बाँह बनाते हैं तो दूसरी रात तोड़ देते हैं।'' कामिल बात ख़त्म कर देता। कामिल ने धीरे-धीरे दाक्षायणी के पास जाना कम कर दिया था। दाक्षायणी ने इसके लिए कभी उसे कोई उलाहना नहीं दिया। ज़िक्र भी नहीं किया। कोई शिकायत भी नहीं की। वैसे भी टाइपिंग और सिलाई स्कूल का पूरा काम मादल देख रहा था। हिसाब भी। कामिल अपने हिसाब के लिए महीने में एक बार जाता था। कई बार वह भी मादल के हाथ भिजवा देता था।

कामिल जब दाक्षायणी के घर पहुँचा दोपहर हो रही थी। दाक्षायणी नहाकर निकली थी। आँगन में कपड़े सूखने के लिए डाल रही थी। उसके कन्धे पर निचुड़ा हुआ तौलिया पड़ा था। बालों से पानी टपक रहा था।

दरवाज़ा खुलने और मोटर साइकिल की आवाज़ सुन कर वह बाहर के कमरे में आई। शीशे से उसने कामिल को देखा। कमरे में आकर उसने दरवाज़ा खोल दिया। अन्दर आकर एक ओर खड़ी हो गई। कामिल कमरे में आया। धूप से आया था वह इसलिए कमरे में अन्धेरा दिखा। कुछ क्षण बाद वह ठीक से दाक्षायणी को देख पाया।

''कैसे हैं तुम्हारे पिता?'' दाक्षायणी ने पूछा। कामिल ने एक क्षण देखा उसे।

''तुम काम ख़त्म कर लो फिर बात करते हैं।'' कामिल बोला।

''कुछ खास?'' दाक्षायणी ने बालों को झटकते हुए पूछा।

''नहीं...यूँ ही।''

''अन्दर चलो फिर...धूप में बैठो।'' दाक्षायणी ने अन्दर जाते हुए कहा।

कमरा बन्द करके कामिल दाक्षायणी के पीछे आँगन में आ गया। आँगन में धूप भरी हुई थी। कामिल तख्त पर बैठ गया। दाक्षायणी ने कन्धे का तौलिया रस्सी पर डाल दिया।

''चाय पिओगे?'' बालों को दोनों हाथों से लपेट कर जूड़ा बनाया उसने।

''नहीं।'' कामिल ने जेब से हलफ़नामा निकाल कर दाक्षायणी को दिया।

जूड़ा बन जाने के बाद दाक्षायणी ने गीली हथेलियाँ अपने कपड़ों पर रगड़ कर पोछीं फिर काग़ज़ ले लिया।

''क्या है?'' पूछा उसने।

कामिल कुछ नहीं बोला।

चुपचाप वह पढ़ती रही। पूरा पढ़ लेने के बाद उसके चेहरे पर एक क्षण के लिए सफ़ेदी की लहर दौड़ गई। वह तख्त पर कामिल के पास बैठ गई।

''सच क्या है?'' कामिल ने दाक्षायणी की तरफ़ सर घुमाया।

''कुछ नहीं...यह एक ग़रीब लड़की है। पैसों की उसे हमेशा ज़रूरत रहती है। मेरे स्कूल से कपड़े ले जाती है। घर से सिल कर ले आती है। मादल से उसने कहा था कि वह दूसरे घरों में भी यह काम करना चाहती है। चार दिन पहले मादल ने उसे रुपयों का एक लिफ़ाफ़ा दिया। शहर हाकिम का घर उसके घर के रास्ते में पड़ता है। उन्हें देने के लिए। यह भी कहा था कि बात कर लेना, वहाँ तुम्हें सिलाई का कुछ काम मिलता रहेगा। उसे जाने में थोड़ी देर हो गई। यह लिफ़ाफ़ा देने उसके घर गई। वह शराब पी रहा था। उसने कुछ और समझा। लिफ़ाफ़ा लेने के बाद उसका हाथ पकड़ लिया। वह वहाँ से हाथ छुड़ा कर चली आई। इसका कहना था कि मादल ने जानबूझ कर उसे वहाँ भेजा था। मादल रुपए के साथ इसे लड़कियाँ इसी तरह भिजवाता है। बस इतनी बात हुई जिसका वह तूफ़ान खड़ा कर रही है। ऐसा क्यों कर रही है? पता नहीं क्या चाहती है।'' दाक्षायणी धीरे-धीरे बोल रही थी। अब तक वह सहज हो गई थी। उसके चेहरे की चमक पहले की तरह लौट आई थी।

''बस... इतनी ही बात है?'' कामिल ने पूछा।

''तुम कहना क्या चाहते हो?'' दाक्षायणी तमक कर तख्त से उठ गई।

''कुछ नहीं'' कामिल भी उठ गया।

''अगर मन में कुछ संशय हो तो बोल दो।'' वह सीधे कामिल की आँखों में देख रही थी।

''नहीं।'' कामिल ने काग़ज़ लेने के लिए हाथ बढ़ाया, ''मैं सम्हाल लूँगा सब।''

''कोई ज़रूरत नहीं।''

''क्यों?''

''मैं अपनी रक्षा ख़ुद कर लूँगी। पर हाँ, यह ज़रूर बताते जाओ कि पूरे शहर में इस लड़की को हलफ़नामा बनवाने के लिए यही नोटरी मिली ? कमलेश कुमारी कौशिक ?''

कामिल अवाक् सा दाक्षायणी को देख रहा था।

''तुम क्या समझते हो। मैं तुम्हारे पास गिड़गिड़ाने आऊँगी कि मुझे बचाओ और तुम मुझे बदले में किसी बात के लिए मजबूर कर लोगे ? मुझे अपनी मुट्ठी में कर लोगे ? मैं तुम्हारे कहने पर नाचने लगूँगी ? या तो तुम्हारे साथ रहने लगूँगी या फिर यहाँ तुम्हारी रखैल बनकर तुम्हारा बिस्तर सजाया करूँगी ? तुम सब मर्द साले, कुत्ते एक से होते हो। बिल्कुल उस आदमी की ज़ात के, जो मेरी माँ का पति है। मेरी माँ को हर तरह का दुख दिया उसने, मेरे साथ जो करता था वह भी जानती है, पर उसे नहीं, मुझे छोड़ा उसने। तुम भी यही चाहते हो। मैं यह सब छोड़ कर तुम्हारे पीछे घूमूँ। तुमसे देखा नहीं जाता कि मैं अपनी ताक़त पर जी रही हूँ। तुमको अपना शरीर देने से इन्कार कर रही हूँ। तुमसे यह भी नहीं देखा जाता कि मादल तुम्हारे मुक़ाबले में खड़ा हो रहा है। अच्छा हुआ तुम यह काग़ज़ लाए। मैं भी देखना चाहती हूँ कि वह तुमसे अपनी और मेरी रक्षा कर पाता है या नहीं।'' दाक्षायणी हाँफने लगी। उसका पूरा चेहरा तमतमा रहा था। सीना ऊपर-नीचे हो रहा था। कामिल का चेहरा धीरे-धीरे स्याह हो गया था।

''मैं उसी सुबह तुमको समझ गई थी जब तुम्हारे पिता तुमको ढूँढते हुए यहाँ आए और तुम बिना मुझसे कुछ बोले, बिना मेरी ओर देखे, चुपचाप चले गए। मुझे विश्वास ही नहीं हुआ। मैं तुम्हारे साथ अपना पूरा जीवन बाँधने को तैयार बैठी थी। माँ तुम्हारे सामने कुछ घंटे पहले मुझे छोड़ गई थी। इस पूरी दुनिया में मैं अकेली, नि:सहाय थी। तुम पर अगाध विश्वास था। पर उस सुबह मुझे तुम्हारा असली चेहरा दिखा। एक बेहद कमज़ोर, डरपोक और ख़ुदग़र्ज़ इन्सान का, जो सारी ज़िन्दगी चोर रास्तों पर घूमता हुआ बड़ा हुआ है। जो किसी के प्रेम का, समर्पण का सम्मान नहीं कर सकता। कोई जिम्मेदारी नहीं ले सकता। और तुम सचमुच वही निकले भी, जो मैंने सोचा था। इस औरत के साथ मिलकर जो तुम करना चाहते हो, कभी नहीं कर पाओगे। और आज यह भी सुनते जाओ जो मैं अन्न का एक भी दाना ग्रहण किए बग़ैर तुमसे कह रही हूँ... अब मैं तुमसे नहीं, तुम मुझसे डरा करना। इसी में तुम्हारी कुशलता है। मेरे ये शब्द भूलना मत!'' दाक्षायणी ने हलफ़नामे का काग़ज़ कामिल के मुँह पर मार दिया। काग़ज़ नीचे गिर गया। कामिल ने झुककर उन काग़ज़ों को उठाया और चुपचाप बाहर चला गया।

वे काग़ज़ एक दिन पहले बड़े डाकख़ाने में रजिस्ट्री किए गए थे। दो दिन

बाद वह पुलिस दफ्तर पहुँचे। वहाँ उस लिफ़ाफ़े को कामिल ने उठवा लिया और मून के भोजनालय की धधकती भट्ठी में डाल दिया।

बरसात ख़त्म होते तक मुन्नी के पास इतने रुपए हो गए थे कि वह शिवालय में पंडित शिवकुमार के घर की अन्धेरे में डूबी, टपकती दुछत्ती को छोड़कर अलग किराए पर मकान ले सके।

मुक़दमा ख़त्म होने के बाद गंगू बिल्कुल ख़ाली हो गया था। अब वह सुबह आकर बस्ते का ताला खोलता और बाहर स्टूल पर बैठ जाता। इधर-उधर खड़े लड़के लोहे की अलमारी से टाइपराइटर निकालते। मुन्नी आती तब उन्हें दूसरी चीज़ें देती। कामिल ने यह काम अब मुन्नी पर छोड़ दिया था। वह अकेली इस पूरे काम को सम्हालने लगी थी।

मकान छोड़ कर जाने की बात जब मुन्नी ने कही तो पंडित शिवकुमार के दोनों बेटे और उनकी पत्नियाँ बहुत ख़ुश हुए। थोड़ी देर उसकी सास रोई फिर कड़ाही में खस्ते तलने लगी। एक सुबह शिवालय की सब्जी मंडी में एक भैंसा गाड़ी पंडित शिवकुमार के घर के नीचे किसी तरह घुसेड़ी गई। उस पर टीन के तीन संदूक़, चक्की का तख्त, कुछ बर्तन, दो अलमारियाँ और पाँच गठरियों में अपना सब सामान लदवाने के बाद मुन्नी रिक्शे में बैठ कर चली गई। गंगू साइकिल चलाता भैंसा गाड़ी के पीछे आया।

लाठी मुहाल की खुरचन की दुकान के बगल में एक दुमंज़िला मकान ख़ाली हुआ था। मकान का दरवाज़ा सँकरी गली से था। भैंसागाड़ी से पहले मुन्नी का रिक्शा आया। मुन्नी ने अपने साथ काम करने वाले लड़कों को बुला लिया था। भैंसा गाड़ी आई तो उन सबने मिलकर बक्से, अलमारियाँ और गठरियाँ अन्दर पहुँचा दीं।

दोनों मंज़िलें मिलाकर मकान में तीन कमरे थे। गंगू को सीढ़ी न चढ़नी पड़े इसलिए मुन्नी ने गंगू का सामान नीचे के कमरे में रखवा दिया। ऊपर के एक कमरे में अपना सामान रखवाया। दूसरे कमरे में पहले से ही ख़रीदकर उसने बेंत की चार कुर्सियाँ और मेज़ डाल दी थीं। एक बड़ा रेडियो ले लिया था। काँच की नई ख़रीदी हुई अलमारी में एक टी सेट और एक लेमन सेट लेकर लगा दिया था। इस कमरे को मुन्नी ने अपना ड्राइंगरूप कहा। उन दोनों कमरों के पास में छोटी रसोई थी। एक गुसलखाना ऊपर और एक नीचे था।

गंगू सीढ़ियों पर बैठ-बैठकर ही ऊपर जा सकता था। शुरू में वह एक-दो बार ऊपर गया फिर उसने ऊपर जाना छोड़ दिया। उसका खाना मुन्नी नीचे ही ले

आती। कभी साथ खाती, कभी नहीं। गंगू अब ज़्यादातर अपने कमरे में ही रहने लगा था। बहुत बार वह धर्मस्थल भी नहीं जाता। मुन्नी ने उसके साइकिल के पीछे कैरियर पर बैठना छोड़ दिया था। गंगू के कमरे में एक खिड़की थी जिससे आसमान का एक टुकड़ा दिखता था। उसमें पंतगें, परिन्दे और नीम की कुछ फुनगियाँ रहती थीं। चाँद बीस दिन वहीं से उगता था। सूरज डूबने पर वह टुकड़ा कई रंग बदलता हुआ काला होता था। अपनी खाट पर लेटा हुआ गंगू आसमान के इस टुकड़े को देखा करता। कुछ दिनों में वह उन सबका इन्तज़ार करने लगा। फिर उसने उनसे बातें करनी शुरू कर दीं। कुछ दिनों में वे सब इशारे से गंगू को अपने पास बुलाने लगे। गंगू भी इशारे करता हुआ उन्हें बुलाता।

गंगू ने बाहर निकलना बिल्कुल कम कर दिया। उसकी साइकिल अब कमरे के बाहर छोटे गलियारे में दीवार के साथ खड़ी रहती। कुछ दिनों बाद साइकिल के पहियों में हवा कम रहने लगी। उसके रिम और कैंची पर धूल जमने लगी, फिर उस पर मरे हुए मच्छर और जाला बनाती मकड़ी चिपके रहने लगे।

कामिल अक्सर घर आता। गंगू के पास ही बैठता वह। पुराने दिनों की बातें करता। धर्मस्थल के बारे में बताता। मुन्नी के बढ़ते हुए काम के बारे में बताता। मुन्नी ने पासपोर्ट बनवाने, नगर पालिका में दाखिल खारिज कराने के काम भी शुरू कर दिए थे। गंगू मुस्कुराता हुआ कामिल की बातें कुछ देर सुनता फिर खिड़की के बाहर अपने दोस्तों से बातें करने लगता। मुन्नी तब तक चाय के लिए कामिल को ऊपर बुला लेती। कामिल एक बार गंगू को, आकाश के उस टुकड़े को देखता फिर ऊपर चला जाता।

मुन्नी अब अक्सर धर्मस्थल से कामिल की येजदी पर ही लौटने लगी।

एक शाम वे दोनों लौटे तो गंगू नहीं दिखा। दरवाज़ा खुला था। मुन्नी ने ऊपर जाकर देखा। ऊपर भी गंगू नहीं था। मुन्नी ने तब ध्यान दिया कि उसकी साइकिल नही है। कामिल बाहर खुरचन वाले की दुकान पर गया। आस पास देखा फिर लौट आया। गंगू कुछ लिख भी नहीं गया था।

अन्धेरा होने लगा था। मुन्नी ने उसके कमरे की बत्ती जलायी। रोशनी होने पर सामने वाले मकान की खिड़की से एक छोटे लड़के ने सर बाहर निकाला फिर वापस अन्दर खींच लिया। कुछ देर में वह दौड़ता हुआ मुन्नी के पास आया। उसने मुन्नी को बताया कि जब गंगू साइकिल पर जा रहा था वह नीचे खड़ा था। गंगू ने कहा है कि जब मुन्नी आए तो उसे बता दे कि वह अपने दोस्तों के साथ भारत परिक्रमा करने चला गया है।

''कौन दोस्त?'' मुन्नी ने पूछा।

''पता नहीं।'' लड़का भाग गया। मुन्नी गंगू की खाट पर धम से बैठ गई।

कुछ देर में वह फफक कर रोने लगी। कामिल कुछ देर चुपचाप उसे रोते देखता रहा फिर उसने मुन्नी का हाथ पकड़ कर उसे उठाया।

"ऊपर चलो।" उसने मुन्नी से कहा।

मुन्नी ने आँसू पोछे। गंगू के कमरे से बाहर निकल कर उसने कमरे की कुण्डी बाहर से बन्द कर दी। घर का दरवाज़ा भी बन्द कर दिया।

कामिल और मुन्नी ऊपर चले गए। अपने कमरे में जाकर मुन्नी फिर रोने लगी। कामिल ने उसे सांत्वना देने के लिए सीने से लगा लिया। मुन्नी उसके सीने से लगकर फूट-फूट कर रोती रही। इतना रोयी कि उस रात उसके मन और तन दोनों के बाँध टूट गए।

धर्मस्थल में कामिल और मादल की मुलाक़ात नहीं होती थी। कामिल ने बैठने की अपनी कोई स्थायी जगह नहीं बनाई थी। वह धर्मस्थल के बिल्कुल दूसरी तरफ़, जेल के सामने मून के भोजनालय में बैठता या बार एसोसिएशन में या फिर बम पुलिस के पास वाली हवालात के सामने नीम के नीचे। मादल बाबू आनन्द स्वरूप के पुराने कमरे की तरफ़ ही बैठता था। कामिल ने टाइपिंग का काम पूरी तरह छोड़ दिया था। वह काम मादल अकेले देखता था। क़ैदियों के रुपयों और खातों का हिसाब किताब करने के लिए कामिल मून के भोजनालय के किसी लड़के को भेजकर मादल को महीने के शुरू में कभी बुलवा लेता था। मादल जल्दी ही आ जाता। कामिल के सामने वह सम्मान के साथ खड़ा रहता। उसने कभी बैठने की कोशिश नहीं की। कभी कामिल ने भी उससे नहीं कहा। वह आता तो कामिल पहले से तैयार रखे रुपयों की गड्डी और हिसाब का काग़ज़ उसे देते हुए हमेशा सिर्फ़ एक वाक्य बोलता।

"कुछ समझना या पूछना हो तो पूछ लेना।"

मादल सर हिला कर रुपए और काग़ज़ ले लेता। कभी लौटकर मादल ने कामिल से कुछ नहीं पूछा।

दाक्षायणी से उस दिन के बाद से कामिल नहीं मिला। क़र्ज़ पर रुपए देने के काम में इस बात से कोई व्यवधान नहीं पड़ा। न दाक्षायणी ने कुछ कहा, न कामिल ने। कामिल को यह भी अनुमान नहीं था कि मादल इस बारे में कितना और क्या जानता है। धर्मस्थल में अब कामिल की बहुत बड़ी ताक़त थी। इस ताक़त को दाक्षायणी न भी समझे, पर वहाँ बैठने के कारण मादल समझता था। चार जज ऐसे थे जिनके चेम्बर में कामिल जब चाहे जा सकता था। धर्मस्थल में सब जानते थे कि उन जजों की अदालत में चलने वाले मुक़दमों के फ़ैसले कामिल लिखवाता

है। उन मुक़दमों से जुड़े दोनों पक्ष कामिल को अपनी तरफ़ करने की कोशिश करते थे। किस पक्ष का साथ देना है यह कामिल तय करता था।

शंकरिया के गिरोह का धर्मस्थल वाला पूरा काम अब कामिल देखता था। जेल में सज़ा काटने वाले लड़कों के आराम का ख़याल रखता था। पेशी में आने वालों को सब सुविधाएँ देता था। अस्पताल में जो भर्ती किए जाते वहाँ की देखभाल भी कर लेता था।

शंकरिया ने काम बढ़ा लिया था। उसके लड़के अब शहर से बाहर भी हाथ मारने लगे थे। शंकरिया ने कई ज़िलों में हत्या, सरकारी नीलामी और देशी शराब का जाल फैला लिया था। ये लड़के कई बार दूसरे ज़िलों में पकड़े जाते। वहाँ की जेलों में बन्द होते। कामिल दूसरे ज़िलों में भी काम देख लेता था। उन लड़कों की पेशी शहर के मुक़दमों में भी होती। उन्हें दूसरे शहर, क़स्बों से यहाँ रेल से लाया जाता। कामिल तब इस बात का इन्तजाम करता था कि उनकी पेशी का समय ऐसा हो कि उस मुजरिम को वापसी की गाड़ी न मिल सके और उसे थाने में रुकना पड़े। ऐसा होने पर मुजरिम की रवानगी न दिखाकर उसे थाने में बंद दिखाया जाता। वहाँ कामिल उसे कुछ घंटों के लिए घर जाने का मौक़ा दिलवा देता। वह अपने माँ-बाप बीवी या बच्चों से मिल लेता। शंकरिया ने कामिल को यह ज़बान दे रखी थी कि कोई भी लड़का तय समय से देर नहीं करेगा। शंकरिया की ज़बान की इज़्ज़त अपराध जगत में थी। अपराध जगत में मशहूर हो गया था कि उसके लड़कों को कभी पुलिस नहीं मारती। उन्हें जेल में कोई तकलीफ नहीं होती। ज़्यादातर की ज़मानतें हो जाती हैं। शंकरिया के साथ अब एक नाम कामिल का भी घूमने लगा था। शंकरिया से त्रस्त लोग परिचय ढूँढकर कामिल के पास उससे मुक्ति की याचना करने आते। कभी कामिल शंकरिया और दूसरे पक्ष के बीच समझौता भी करवा देता। अपराध जगत का यह मूल सिद्धान्त कामिल भूल गया था कि कभी किसी व्यक्ति को, कहीं भी ज़्यादा नहीं दिखना चाहिए। ज़्यादा दिखने पर वह बहुत सी आँखों को खटकने लगता है। आँख की यह किरकिरी कोई भी प्रशासन, मुक़ाबले का दूसरा अपराधी गिरोह, उसी गिरोह के नीचे के महत्त्वाकांक्षी लोग, राजनेता और उससे अपमानित हुआ व्यक्ति, ज़्यादा दिन बर्दाश्त नहीं करते।

जेल, पुलिस, थाना, चौकियों, न्यायाधीश, वकील, पेशकार, मुंशी, अपराधियों के पूरे एक जगत और चक्र के बीच घूमते हुए कामिल का क़द शंकरिया के साथ बड़ा होता जा रहा था। कामिल धर्मस्थल के अन्दर एक दूसरा धर्मस्थल बन रहा था। कामिल ने नीलामी में मिलेट्री की एक छोटी जीप ख़रीद ली। उस पर वह चलने लगा। कुछ दिन बाद ही लोगों ने देखा कि उस पर कोई नम्बर प्लेट नहीं थी। सिर्फ़ कामिल का नाम लिखा था।

यह अन्तरात्मा क्या होती है बिजन? कहाँ रहती है? कैसी होती है? किसी ने देखी है कभी? क्या तुमने? क्या सबके अन्दर होती है? क्या जानवरों में भी है? नहीं न! जानवरों में कोई अन्तरात्मा नहीं होती। शायद इसीलिए वे निर्विघ्न, सुखी जीवन जीते हैं... किसी भी संशय, किसी दुविधा से परे। न हत्या करने में, न अपने हत्यारे को पहचानने में। और वे सब लाखों करोड़ों जानवर, सैकड़ों वर्षों से एक ही तरह से जीवित हैं... एक ही तरह से प्रतिक्रिया करते हैं। उनको कभी कोई प्रश्न परेशान नहीं करता। कोई युद्ध उनके अन्दर नहीं जन्मता। हम ऐसा जीवन क्यों नहीं जी पाते? क्यों हमने अपने लिए एक अदृश्य, क्रूर, अन्तरात्मा के मायावी दैत्य का मिथ्या जगत रचा है जो हर पल हमें ही नोंचता है। हमारे ही रक्त से पोषित होता है। यह क्या है बिजन जो हर क्षण हमें चाबुक मारकर उठाता-बैठाता है? हमारी यह अन्तरात्मा हमें ही हर क्षण धिक्कारती है। हर क्षण हमारे धैर्य, हमारे आत्मविश्वास, संकल्पों को खंडित करती है। हमारी विराट आत्मा को कलुषित और पातकी बताती है। हमारे जीवन को अभिशाप सिद्ध करती है। यह हमारे जीवन में कुछ भी सार्थक, स्वस्थ, सुखकर नहीं होने देती। यह अन्तरात्मा जीवन का सबसे बड़ा बोझ है जो हम महान समझ कर ढोते हैं। सबसे बड़ा पाप है जो हम ख़ुशी से करते हैं। सबसे बड़ी निर्लज्जता है जिसे हम अगले जन्मों के किसी विश्वास पर पालते हैं। हमने, हमारे पूर्वजों ने बहुत कुछ रचा है बिजन। हमारे पास पूरे जीवन को निर्देशित करने वाली ज्ञान की असंख्य पुस्तकें हैं। अनेक धर्म हैं.. धर्मस्थल हैं... समाज की, राज्य की व्यवस्थाएँ हैं... नैतिकता के ग्रन्थ हैं। हमें किसी स्थिति में कोई संदेह, कोई संशय नहीं होना चाहिए। पर ऐसा नहीं होता। अपनी विराट आत्मा के साथ हम एक अदद अन्तरात्मा भी पालते हैं जो लगातार हमारे विरुद्ध चीख़ती रहती है। मच्छर की तरह भनभन करती विराट

आत्मा को शिथिल करती रहती है। क्या हम इससे मुक्त जीवन नहीं जी सकते? ऐसा जीवन जिसमें सब हो सिवाय किसी अन्तरात्मा के? क्या इस अन्तरात्मा की हत्या नहीं कर सकते? गला नहीं घोट सकते इसका? हम यदि ऐसा कर सकें तो शायद हर संशय, आकुलता, दुविधा से मुक्त हो जाएँगे। जानवरों की तरह एक सा, निर्द्वन्द्व सुनिश्चित जीवन जी सकेंगे?

धर्मस्थल ने मुझे यही सिखाया है बिजन कि हर क्षण अन्तरात्मा को मारो। उसकी हत्या करो। तत्काल, त्वरित, तत्क्षण। मैंने वहाँ रोज़ यही देखा है। धर्मस्थल अन्तरात्माओं का मक़तल है। वहाँ के बूचड़ख़ानों में कुछ भी और जिबह नहीं किया जाता। धर्मस्थल इस अन्तरात्मा का कभी कोई साक्ष्य नहीं मानता। कोई प्रमाण नहीं मानता। वहाँ हर शपथ के साथ एक अन्तरात्मा मरती है। हर फ़ैसले के साथ भी एक अन्तरात्मा मरती है। काले चोगों में, सुनहरे विग में, पट्टीदार वर्दियों में कुछ और नहीं, मरी अन्तरात्मओं की काया होती है।

ऐसा लगता है, पर क्या सचमुच ऐसा होता होगा बिजन? क्या अन्तरात्मा की हत्या की जा सकती है? धर्मस्थल करता होगा, पर क्या मैं कर सकता हूँ? तुम कर सकते हो? किससे पूछूँ? कौन बताएगा? बाबू क्या कहेंगे मुझे मालूम है।

मैं क्यों यह सब लिख रहा हूँ जानते हो? मैं आजकल अपनी अन्तरात्मा से बहुत डरा हुआ हूँ। मुझे लगता है यह मुझे सुख और शान्ति से जीने नहीं देगी। कई बार रातों को ऐसा लगता है जैसे कोई छाती पर बैठ कर फुफकार रहा है। कई बार धर्मस्थल के सामने अन्धेरे में बैठकर चुपचाप देखता रहा हूँ उसे। क्या सचमुच यह अन्तरात्माओं का मक़तल है। है, तो मैं वहाँ कैसे जीवित हूँ? कैसे काम करता हूँ? कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरी अन्तरात्मा की भी हत्या हो गई हो और मुझे पता ही नहीं। पर ऐसा नहीं हुआ है बिजन।

जानते हो, कुछ दिन पहले इसी से घबरा कर मैं पहाड़ों पर चला गया। बाबू को दो दिन के लिए पड़ोसी के घर छोड़ दिया। मैं वहाँ बिल्कुल अकेला था। एक शाम जब गहन एकान्त था, निर्जनता थी, वन था, बारिश थी, चारों ओर ऊँचे पहाड़ थे, बादल थे, मैं एक पंगड़डी पर जा रहा था। सिलवर ओक और चीड़ों के बीच उस पंगडंडी पर गिरी हुई पत्तियों की तीखी गंध थी। उसे ढकती हुई बीच में पकी

नाशपातियों की गंध थी। शाम के ख़ाली और लम्बे एकान्त में एक घर के खुलते बन्द होते दरवाज़ों की आवाज़ें, फ़ोन की लम्बी घंटी उस निस्तब्धता को भेद रहीं थीं। एकबारगी सब काँप जाता था। बॉलीबाल के मैदान को घेरने वाली जाली से मुँह चिपका कर अन्दर देखने पर फैला हुआ स्लेटी सन्नाटा था जो कुछ देर पहले बच्चों की किलकारियों से गूँज रहा था। वहाँ गीली मिट्टी की अलग गंध थी जिसे बादलों के टुकड़े बीच में हथेलियों में बटोर कर ले जाते थे। जीवन निस्पन्द हो गया था। सब कुछ स्थगित था। चारों ओर पत्तों पर गिरती बारिश की बूँदों का शोर था। फिर धीरे- धीरे उतरते अंधेरे में बारिश की बूँदें भी दिखना बन्द हो गईं थीं। वे इतनी धीमी थीं कि उनकी आवाज़ भी नहीं हो रही थी। मिट्टी पर उनके गिरने से उठने वाली गंध बता रही थी कि बारिश हो रही है। इस गंध में एक रेशा उस रातरानी का था जो इस उतरते अन्धेरे में खिलना शुरू हो रही थी। इस अन्धेरे में धीरे-धीरे कुछ बेडौल, छितरी रोशनियाँ उभरने लगीं। ये घरों की दीवारों पर लगे बल्ब, सड़क के लैम्प पोस्ट और ईटों से बने चूल्हों की थीं। अन्धेरा, बारिश, गंध, और रोशनी के इस जगत में उस क्षण जो चीज़ मेरे हाथों से छूट रही थी वह जीवन के लिए मेरा मोह था... आसक्ति थी। मृत्यु... अजल... मेरी एकमात्र अभीप्सा थी। मेरी अकेली लालसा... मेरी प्रार्थना थी। पता नहीं, मेरे अन्दर वह कौन था बिजन ? कहीं अन्तरात्मा तो नहीं ?

कामिल की आँख खुली तो वह उठ गया। अवाक् सा कुछ देर बैठा सामने देखता रहा। फर्श पर बाबू पाँव समेटे बैठे थे। सामने बनी हुई मूर्ति मिट्टी के लोंदों में पड़ी थी। लोहे की पत्ती और तार एक ओर गिरे पड़े थे। मिट्टी में सनी उँगलियाँ लिए वह फटी आँखों से सामने पड़े मिट्टी के ढेर को घूर रहे थे। चेहरा लाल था। पसीने में भीगा हुआ।

अभी रात ख़त्म ही हुई थी। उसका बचा हुआ अन्धेरा अभी था। हवा में ठण्ड थी।

कामिल खाट से उतर गया। पास आकर उसने उनका माथा छुआ। हल्की देह गर्म थी।

वह भी पास बैठ गया। मिट्टी के ढेर को देखा उसने।

''चाय बनाता हूँ। उठो... हाथ धो लो।''

उन्होंने कामिल को देखा। कामिल को लगा वह रो चुके हैं। कामिल उठ गया। उसने उन्हें सहारा दिया। वह भी उठ गए। उनकी कमर से लुंगी खिसक गई थी। कामिल ने कस दी। सहारा देकर कमरे के बाहर खुली जगह पर उन्हें ले आया। नल की टोंटी खोली उसने। पानी आना शुरू हो गया था। उन्होंने झुककर नल की धार में हथेलियाँ रख दीं। उन्हें आपस में रगड़ा। कुछ देर में मिट्टी और रंग उँगलियों से छूट गए। नल बन्द कर दिया उन्होंने। लुंगी का कोना उठाकर हथेलियाँ पोछीं।

''बैठो यहीं''... कामिल ने अन्दर से चौकी उठाकर रसोई के दरवाज़े पर रख दी। वह चौकी पर बैठ गए। कामिल ने चाय का पानी चढ़ा दिया। वह भी रसोई की देहरी पर बैठ गया।

''क्या हो गया?'' अब पूछा कामिल ने।

''मेरा समय ख़त्म हो गया।'' उन्होंने ख़ाली आँखों से कामिल को देखा।

''किस बात का?''

''हर बात का। पहले कैसे हो जाता था सब। हाथ में कुछ लिया और कलकल करती नदी की तरह सब बहता चला जाता था। उल्लास था... आनन्द था। अब कुछ भी नहीं है। जैसे सब सूख गया है। कोई संदेह, कोई संशय ख़त्म नहीं होता। अभी कुछ ठीक लगता है, कुछ बनाता हूँ, दूसरे ही क्षण सब व्यर्थ लगने लगता है। नष्ट कर देता हूँ। तुम्हीं देखो। कितना समय हो गया।''

''इसमें तुम्हारा क्या दोष है?''

''फिर... फिर किसका दोष है?''

''उसका जो तुम्हारे अन्दर बैठ कर उसे रच रहा है। ख़ुद ही भूल गए क्या? कहीं चुपचाप कोई अहंकार तो नहीं आ गया? कोई लोभ तो जन्म नहीं लेने लगा? रचने का बोध, भ्रम, गर्व तो नहीं पाल रहे हो, इसीलिए यह सब दुख है? फिर संशय ख़त्म हो गए, संदेह ख़त्म हो गए तो बचा क्या? निर्णय हो गया, अन्त मिल गया तो आगे क्या है? कुछ भी तो नहीं। सत्य तो ढूँढते रहना है जीवन भर। नेति नेति। अभी जो रचा वह व्यर्थ है। और श्रेष्ठ चाहिए और सार्थक चाहिए। यही तो रचना का सुख है। अन्तहीन यात्रा। आकुलता से भरी, यातना से भरी। नितान्त अकेली। कोई साथ नहीं... श्रेय नहीं... प्रेय नहीं।''

''अरे!''... उन्होंने कामिल का हाथ पकड़ लिया, ''तुम यह सब कैसे जानते हो। यह तो गूढ़ मर्म है रचना का।''

''तुम्हीं से तो सुनता रहता हूँ। रट चुका है अब तो, इतना सुना है सब।'' चाय का पानी खौलने लगा। कामिल उठ गया। पीछे से उनकी आवाज़ वह सुन रहा था।

''मैंने पूरी रात काम किया था। मूर्ति तैयार भी थी। जहाँ मिट्टी ज़्यादा थी सबसे महीन चाकू से उसकी आख़िरी पर्त उतार रहा था। तभी सुना कोई कहा रहा हो यह तो कुछ भी नहीं बना है। ऐसी तो लाखों मूतियाँ बन चुकी हैं। इसमें नया क्या है? विलक्षण क्या है? सृजन कहाँ है? तभी देखा मैंने, यह तो ख़ुद माँ बोल रही थी। उसके होंठ हिल रहे थे। इसी को रचना कह रहे हो? इस पर इतरा रहे हो? मेरे सर में जैसे ज्वार उठने लगा। तेज़ चक्कर आया। मैंने चीख़ कर उसे चुप कराना चाहा। पर वह बोलती रही। उसकी आवाज़ तेज़ होती जा रही थी। मेरा सर फटने लगा। वह चुप नहीं हुई। फिर मैंने माँ का गला दबा दिया। उसकी हत्या ही कर दी। पूरी मूर्ति को ऊँगलियों से मसल डाला। जाल, तार सब नोंच कर फेंक दिए। वह सब जो इतने वर्षों में रात-दिन काम करके बनाया था... एक क्षण में नष्ट कर दिया।''

कामिल ने एक बड़े गिलास में चाय उनके सामने रख दी। दूसरी ख़ुद लेकर फिर देहरी पर बैठ गया।

''तुम ठीक कहते हो।'' गिलास में फूँक मारते हुए बोले वह, ''हर रचना के बाद सबसे पहले अपने अन्दर उसकी हत्या करनी होती है जिसने उसे रचा था। रचनाकार होने के बोध, गर्व की हत्या करनी होती है। जो रचा, उसकी भी हत्या करनी होती है। तभी अगली रचना का भ्रूण जन्म लेता है। अनिश्चित, भंगुर, एक नया जीवन।'' उन्होंने चाय का घूँट लिया।

''तुम ठीक सोच रहे हो।'' कामिल ने देखा उन्हें, ''अब सब नए सिरे से शुरू करो। सब कुछ पूरी तरह बदला हुआ। मिट्टी नहीं, इस बार मोम की मूर्ति! और दो बाँह नहीं, अट्ठारह बाँह। नौ बाँह एक तरफ़, नौ दूसरी तरफ़। एक बाँह के साथ दूसरी बाँह मिलाओ तो एक नई हस्त मुद्रा। कुल इक्यासी मुद्राएँ। जीवन का सबसे बड़ा काम करो। कोई जल्दी नहीं, कोई लालसा नहीं। मैं आज ही सब सामान ला देता हूँ। तुम लिख दो या साथ ही चलते हैं। आज तो कचहरी बन्द है।''

उनका चेहरा खिल गया, ''मैं तो डर ही गया था। लगा जैसे अब कभी कुछ नहीं बना पाऊँगा। फिर जीवन का अर्थ ही क्या बचेगा? यह तो साक्षात मृत्यु होगी। एकदम से चक्कर भी आया था। पर तुमने सब कुछ ठीक से समझ लिया है। चलते हैं चाय पीकर। पहले गुरु के पास चलेंगे। उनको भी तो बताना होगा कि मैंने क्रोध में, हताशा में माँ का गला दबा कर हत्या कर दी। तुम देखना, हँसेगे वह। उनकी आँखें बंद हो जाएँगी। एक दाँत होंठों के बाहर दिखने लगेगा। तुमने नहीं, माँ ने ख़ुद अपनी हत्या करवायी। कृति जब ख़ुद अपनी हत्या करने का आवाहन करे, तो समझो अभी बहुत कुछ शेष है तुम्हारे अन्दर। गहरी कला, गहरा संकल्प, गहरी निष्ठा... गहरा जीवन। रचना के जगत में, कृति की हत्या वे नहीं करते जो उससे

संतुष्ट हो जाते हैं और किसी कूड़े के ढेर पर बैठ कर पूरे जीवन जम्हाइयाँ लेते हैं। उनके दर्शन के बाद चल कर सब सामान ख़रीद कर नए सिरे से शुरू करते हैं। अद्‌भुत बताया तुमने। इक्यासी नृत्य मुद्राएँ एक ही प्रतिमा में।'' उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। उनके चेहरे की लाली ख़त्म हो गई थी। पसीना भी। अब वह सहज थे।

''बाहर खाएँगे भी। दही जलेबी और खस्ते'' गिलास से बड़े घूँट लेने लगे वह। जल्दी जल्दी भी।

''कितने दिन पहले नहाए थे?'' कामिल ने पूछा।

''तीन दिन पहले।'' वह शर्मा गए।

''कुछ नहीं सबसे पहले आज नहाओगे।''

''पर साबुन नहीं लगता मुझसे। साला हर बार फिसल जाता है।''

''मैं लगा दूँगा।'' कामिल ने चाय ख़त्म कर ली। उन्होंने भी गिलास ख़ाली कर दिया। उठने लगे फिर बैठ गए।

''क्या हुआ?'' कामिल ने पूछा।

''चक्कर आ गया।'' उन्होंने आँखें बन्द कर लीं।

''कमज़ोरी से होगा।'' कामिल ने उनका हाथ पकड़कर सहारा दिया। हाथ का सहारा लेकर वह उठे। कुछ देर कामिल से सटे खड़े रहे। आँख धीरे से खोली। नीचे देखा फिर ऊपर। ऊपर आसमान का नीला रंग अब सुबह की रोशनी में चमक रहा था।

''पहले भी हुआ है कभी?'' कामिल ने पूछा।

''आज ही रात में हुआ था। मूर्ति नष्ट करने के ठीक बाद। कुछ देर में ठीक भी हो गया था।''

''चलो... आज तुम्हें डाक्टर को भी दिखाते हैं। पहले नहाना, फिर जलेबी खाना, फिर डाक्टर।''

''नहीं'' वह कोठरी में घुसते हुए बोले, ''नहाने के बाद पहले गुरु जी के पास, फिर जलेबी, फिर सीधे बाज़ार। डाक्टर साला चूतिया होता है। कहेगा तम्बाकू छोड़ दो। पान छोड़ दो।''

उन्होंने आले में रखी चुनौटी से तम्बाकू निकाल कर रगड़ी।

''गाड़ी में चलोगे?'' कामिल ने पूछा।

''कहाँ?''

''सब जगह। फिर मन हो तो शिकार पर चलें। वहीं बत्तख, खरगोश भून कर खाएँगे।''

''अरे नहीं। गुरु तो गिलिस बाज़ार की गली में रहते हैं। वहाँ एक गाय खड़ी

हो जाए तो पूरा रास्ता बन्द हो जाता है। फिर कहाँ जा रहे हैं यह भी तो सोचो। घूमते हुए चलेंगे।''

कामिल ने अलमारी से तौलिया निकाला। उनकी धोती निकाली। एक नया कुर्ता निकाला।

''चलो।'' उनका हाथ पकड़ा उसने।

''पानी अभी ठण्डा होगा यार।'' उन्होंने ठिठुरने का अभिनय किया।

''नखरे मत करो अब।'' कामिल ने हाथ घसीटा और साथ लगे छोटे से गुस्लखाने में उन्हें ले गया।

''तुम इक्यासी मुद्राओं के बारे में कैसे जानते हो?'' पटरे पर बैठते हुए पूछा उन्होंने।

''एम.ए. इसी में किया है। आइकनोग्राफी सुना है कभी।'' कामिल ने पानी डालकर पीठ पर साबुन रगड़ते हुए पूछा।

वह कुछ नहीं बोले। पानी पड़ने पर कुछ देर सिहरते हुए मुँह से आवाज़ें निकालते रहे।

''ख़ुशबू तो अच्छी है।'' कुछ देर बाद बोले वह।

''रोज़ नहाओ तो यह ख़ुशबू रोज़ मिलेगी।''

''ऐसी ख़ुशबू का ज़िक्र शूद्रक ने भी किया है। वंसतसेना भी ऐसे ही किसी साबुन से नहाती होगी।''

''सुधरना मत कभी।'' हँसते हुए कामिल उनके पूरे शरीर में साबुन लगाने लगा।

कुछ देर में वह शिखरिणी छन्द गुनगुनाने लगे।

बड़ा चौराहा, कोतवाली, दवा, फलों की दुकानें पार करके वे एक पतली सड़क और फिर एक पतली गली और फिर उसके भी अन्दर एक और गली में घुस गए।

''यहाँ रहते हैं?'' कामिल ने कीचड़ से पाँव बचाकर चलते हुए पूछा।

''हाँ... अभी और अन्दर चलो।'' बाबू ने कहा। वह आगे थे कामिल पीछे। गली इतनी चौड़ी नहीं थी कि वे दोनों एक साथ चल सकें। दोनों ओर घरों की सपाट चपटी दीवारें थीं जिनकी नंगी ईंटें दिख रहीं थीं। ऊपर उनमें लोहे के जाल वाले छज्जे बने थे। उन दीवारों से चिपके पाइप से पानी गिर रहा था। गली में उसका कीचड़ बना था।

बाबू उत्साह में बोलते हुए आगे जा रहे थे। कुछ भी न सुनता हुआ कामिल

पीछे था। आगे जाकर गली एक खुली जगह में आई जहाँ पीपल का पेड़ था। उस जगह से तीन गलियाँ और गई थीं। वह एक गली में घुसे फिर एक कोठरी के दरवाज़े के पास रुक गए। दरवाज़े के अन्दर सामने जाली वाले छोटे बक्सों की क़तार लगी थी जिनमें मुर्गियाँ बन्द थीं।

दरवाज़ा खटखटाया उन्होंने। कुछ देर खटखटाते रहे।

''बन्द है।'' कामिल ने ऊपर इशारा किया। लोहे की कुण्डी लगी थी। उसमें ताला पड़ा था।

''कहीं जाते भी हैं तो दरवाज़ा खुला छोड़ जाते हैं। फिर ताला तो उनके पास कभी था ही नहीं।''

कामिल ने इधर-उधर देखा। मुर्गियों की क़तार के पीछे एक कमरे के आगे पड़े तख्त पर एक आदमी लेटा था।

कामिल उसके पास गया।

''कहाँ गए हैं?'' कामिल ने दरवाज़े की ओर इशारा किया।

''मैं तो मुर्गियाँ लेने आया हूँ।'' उसने आगे इशारा किया, ''उनको पता होगा। मुर्गियाँ उन्हीं की हैं।''

कामिल ने उधर देखा जिधर उसने इशारा किया था। गली एक दरवाज़े में जाकर ख़त्म हो गई थी। वहाँ कोई घर था। लकड़ी का बड़ा फाटक था। उसके अन्दर कुर्सी पर एक आदमी बैठा अख़बार पढ़ रहा था।

कामिल ने बाबू का हाथ पकड़ा और उस फाटक पर पहुँचा। आहट या परछाईं से उस आदमी ने सर उठाकर देखा।

''गुरु जी कहाँ हैं?'' बाबू ने आगे आकर पूछा।

उस आदमी ने कुछ क्षण बाबू को देखा फिर बहुत धीरे से बोला।

''चार दिन पहले वह मिट्टी हो गए।''

बाबू ने कामिल का कंधा पकड़ लिया। उस आदमी के सामने एक और ख़ाली कुर्सी पड़ी थी। कामिल ने बाबू को सहारा देकर उस पर बैठा दिया।

''एक कुर्सी लाओ।'' उस आदमी ने अन्दर की ओर मुँह करके आवाज़ दी। एक लड़का एक कुर्सी और ले आया। कामिल उस पर बैठ गया।

बाबू का चेहरा सफ़ेद हो गया था। चुपचाप वह कोठरी के दरवाज़े की ओर देख रहे थे।

''क्या हुआ था?'' कामिल ने धीरे से पूछा।

''क्या बताएँ!'' उसने ऊपर की ओर इशारा किया। कुछ देर चुप रहा फिर बोला, ''मैंने ही सब किया था। मुझे बहुत मानते थे। उनके पास एक छोटा खटोला

था। यहीं, इसी दरवाज़े के बाहर उसे डालते और उसी में सिमट कर बैठ जाते थे। मुझसे देर तक बातें करते थे। मौत के दो दिन पहले मेरे यहाँ एक अजीब वाक्या हुआ। मेरी एक मुर्गी रंग बदलने लगी। वह काली थी, पर शाम होते-होते सफ़ेद हो जाती थी। सुबह फिर काली। मैं बहुत डर गया। मैंने किसी को नहीं बताया। बस उन्हें बताया जाकर। वह उसी खटोले में बैठे कुछ गा रहे थे। मैंने रोकना मुनासिब नहीं समझा। कुछ देर बाद जब उन्होंने आँखें खोलीं तब मुझे देखा। मैंने मुर्गी के बारे में बताया। तब वह उठकर यहाँ इसी जगह आए। उस समय वह मुर्गी आधी काली, आधी सफ़ेद थी। कुछ देर उसे देखते रहे फिर मुझसे बोले।

"मेरा समय पूरा हो गया है। मुझे अब जाना चाहिए।"

"मैं कुछ समझा नहीं। सुबह उन्होंने मुझे बुलाया। मुझे साथ लेकर यहाँ की उस संस्था में गए जो मेडिकल कालेज के लिए देह दान करवाती है। उन्होंने अपनी देह दान कर दी। काग़ज़ पर दस्तखत किए। मैं गवाह बना। जामिन भी, कि उनके मरने पर ख़बर कर दूँगा। चार दिन पहले शाम को दरवाज़े के बाहर वह खटोले पर बैठे थे। उन्होंने मेरे लड़के से कहकर मुझे बुलाया। मैं गया तो पूछा, 'अब देखना। क्या मुर्गी अब भी रंग बदलती है।' मैंने निगाह रखी। उसका रंग बदलना बन्द हो गया था। मैंने सुबह उन्हें बताया। वह खटोले पर लेट गए। बोले जाकर ख़बर कर दो। मुझे ले जाएँ। मैं हकबकाता हुआ उन्हें देखता रहा। वह मुझे देख कर मुस्कुराए। फिर मुस्कुराते रहे। देर तक मुस्कुराते ही रहे। मैं झुका। उन्हें छुआ। उनकी देह मिट्टी हो चुकी थी। मैंने जाकर ख़बर कर दी। वे लोग आए और उन्हें ले गए।" उस आदमी ने एक गहरी साँस ली।

"और मुर्गी...क्या हुआ उसका?" कामिल ने धीरे से पूछा।

"मैंने बहुत ढूँढा पर नहीं मिली। पीछे गोबर के कंडे पाथने वाला कहता है उसने उसे उड़ते हुए देखा था। मेरी बीवी कहती है जो सामने तख्त कर लेटा है, वह उठा ले गया। पता नहीं।..."

"वह ताला किसका है?"

"इस कोठरी का मालिक डाल गया है।"

"कहाँ रहता है?"

"आगे उसकी सब्जियों की बड़ी दुकान है। पहले यहाँ वह सब्जियाँ ही रखता था। बाद में उन्हें दे दी।"

"मैं आता हूँ।" कामिल ने बाबू से कहा। उन्होंने सुना या शायद नहीं सुना। पत्थर की तरह वह चुपचाप बैठे रहे।

कामिल गली से होता हुआ वापस पीपल तक आया। उसने कपड़ों पर इस्त्री

कर रहे एक आदमी से सब्जी वाले की दुकान पूछी। सब्जी वाला सब्जियाँ सजा रहा था। कामिल उसके पास गया। कामिल ने उससे चाभी माँगी।

''क्यों?'' उसने कामिल को ऊपर से नीचे तक देखा।

''एक बार कोठरी देखनी है।''

''तुम कौन हो?''

''तुम साथ चलो। ख़ुद ताला खोल दो। मेरे पिता के गुरु थे वह। एक बार कोठरी का दर्शन करके चले जाएँगे।''

''ताला नहीं खुलेगा।'' वह आदमी फिर झुककर कुछ सूखी भिंडी और घुइयाँ सजाने लगा। कामिल ने उसके बाल पकड़ लिए। बालों से खींचते हुए उसका सर ऊपर उठाया। वह सीधा हो गया। कामिल की ऊँगलियाँ उसके बालों पर कसती गईं। उसकी आँखें लाल होकर बाहर निकलने लगीं।

''खुलेगा?'' कामिल ने ऊँगलियों की जकड़ और बढ़ाते हुए पूछा। कामिल ने उसके सर को झटके दिए जैसे वह उसके सारे बाल जड़ों और खाल के साथ उखाड़ लेगा।

''हाँ।'' उसने अपनी जेब से एक चाभी निकाली। कामिल ने उसी तरह बाल पकड़कर उसे आगे धकेल दिया। कुछ क़दम लड़खड़ाने के बाद वह सीधा हो कर चलने लगा।

कोठरी पर आकर ताला खोल दिया उसने। कामिल ने बाबू को सहारा देकर उठाया। उन्हें कोठरी के दरवाज़े तक ले आया। पीछे वह सज्जन भी थे जो अख़बार पढ़ रहे थे।

कोठरी के अन्दर हल्का अन्धेरा था। कुछ क्षणों में सब कुछ दिखने लगा। पूरी कोठरी ख़ाली थी। कुछ भी नहीं था। न अन्न कण, न वस्त्र, न जल की बूँद। कोने में एक छोटा खटोला पड़ा था।

बाबू कुछ देर दरवाज़े पर खड़े रहे फिर धीरे से अन्दर गए। खटोले को छुआ उन्होंने फिर फूट-फूट कर रो पड़े। कुछ देर रोने के बाद वह उठे।

''मुझे यह चाहिए। अभी... इसी समय।'' उन्होंने खटोले की तरफ़ इशारा करते हुए कामिल से कहा।

कामिल ने झुककर खटोला उठा लिया। जेब से रुपए निकाल कर उसने सब्जी वाले को दिए।

एक हाथ में खटोला और दूसरे हाथ में घिसटते हुए बाबू की देह थामे वह पीपल तक आया। वहाँ एक रिक्शा खड़ा था। बाबू को सहारा दे कर उसने रिक्शा पर बैठाया। रिक्शे में पीछे हुड पर खटोला रख दिया। बाबू के पास कामिल भी

बैठ गया। रिक्शे वाले ने माथे पर कपड़ा लपेटा और गद्दी पर बैठकर पैडल मारता हुआ दूसरी बड़ी गली से निकल गया।

रिक्शा रुका तो कामिल ने उन्हें उतारा। पत्थर की लाल बेंच पर बैठे दो लड़कों को इशारा किया। उन्होंने रिक्शे से खटोला उठा लिया।

''पैसे देकर ऊपर ले आओ।'' कामिल ने एक से कहा।

बाबू को सीढ़ियों पर सम्हालता हुआ वह ऊपर ले गया। घर का दरवाज़ा खुला था। बड़ा भाई अपने कमरे का ताला खोलकर कुछ रखने आया था। घर की एक ताली वह भी रखता था। आहट सुनकर वह कमरे के बाहर आया।

''क्या हुआ?'' बाबू की हालत देखकर पूछा उसने।

''कुछ नहीं... थोड़ी तबीयत ख़राब है।'' कामिल ने कहा। वह फिर कपड़े का पर्दा हटाकर अपने कमरे में चला गया।

कोठरी में कामिल ने उन्हें लिटा दिया। चौकी पर रखा टेबल फैन चला दिया। लेट कर वह लम्बी साँसें लेने लगे। चेहरे पर फिर पसीना आ गया। पीछे दोनों लड़के खटोला ले आए। कामिल ने उसे दीवार के साथ खड़ा कर दिया। लड़के वापस चले गए।

दोपहर हो गई थी। खाना बनाने वाली घर बन्द पाकर लौट गई थी।

कामिल ने रसोई में आकर पानी पिया फिर भाई के कमरे के बाहर रुक गया

''तुम्हारा खाना ले आऊँ?'' कामिल ने पूछा।

पर्दा हटाकर वह बाहर आया।

''हाँ!'' उसने कहा फिर पिता को देखने कोठरी में चला गया। कामिल नीचे जाने के लिए खुली जगह पर आया। तभी उसे भाई की तेज़ चीख़ सुनाई दी। कामिल वापस कोठरी में आया। वह अचेत पड़े थे।

''सुबह भी चक्कर आए थे, मैं गाड़ी लाता हूँ। अस्पताल लेकर चलते हैं।'' कामिल सीढ़ियों से नीचे भागा। पत्थर की बेंच पर दोनों लड़के अभी बैठे थे।

''जल्दी ऊपर जाओ... बाबू बेहोश हो गए है... उन्हें सम्हाल कर उतारो। मैं गाड़ी निकालता हूँ। कुछ लड़के और बुला लो।'' दौड़ता हुआ कामिल दूसरी सड़क पर खड़ी जीप की तरफ़ भागा। जीप को घुमाकर वह लाया। जीप खुली छत वाली थी। कुछ ही क्षणों में एक लड़का उन्हें गोद में उठा कर ले आया। दूसरे लड़के और भाई पीछे थे।

''लिटा दो।'' कामिल ने पीछे की सीट की ओर इशारा किया।

लड़के ने उन्हें सीट पर लिटा दिया। भाई साथ में बैठ गया। तब तक दो लड़के और आ गए। वे सब, जहाँ जगह मिली जीप में घुस गए। कामिल ने जीप दौड़ा दी। कुछ ही मिनटों में वे उर्सला अस्पताल पहुँच गए।

इमरजेन्सी के बाहर गाड़ी रोक दी कामिल ने। वहाँ सन्नाटा था। एक डाक्टर ड्यूटी पर था। एक लड़का दौड़कर उसे पकड़ लाया। दूसरे दो लड़के स्ट्रेचर घसीट लाए। जीप से उन्हें उतार कर स्ट्रेचर पर लिटा दिया। लड़के उन्हें अन्दर ले गए। डाक्टर ने नब्ज देखी। ख़ून का दबाव नापा। बहुत ज़्यादा था।

''हाईब्लड प्रेशर है। ब्रेन स्ट्रोक पड़ा है। लकवे का हल्का सा अटैक है। होश में आएँ तो पता लगे कहाँ क्या असर हुआ है।'' बोलते हुए डाक्टर एक काग़ज़ पर दवाएँ और दूसरे सामान भी लिखता जा रहा था।

''ये लाइए जल्दी।''

कामिल ने पर्चा लिया। तब तक भाई और लड़के डाक्टर की मदद में जुट गए।

कामिल जब तक लौटा तब तक स्ट्रेचर से पलंग पर लिटा कर उन्हें ग्लकोस चढ़ा दिया गया था। ऊपर के कपड़े खोल कर चादर डाल दी गई थी। एक नर्स चार्ट बना रही थी।

कामिल ने दवाएँ डाक्टर को दे दीं।

''घबराइए मत!'' उसने कामिल के कन्धे पर हाथ रखा, ''सब कुछ कन्ट्रोल में है।''

एक कमरे के कोने में उनका पलंग लगा था। कामिल पलंग के पास रखे स्टूल पर बैठ गया। अब ठीक से देखा उसने। खिड़की की रोशनी में उनके चेहरे का पीलापन दिख रहा था। ख़ून जैसे निचुड़ गया था। नीचे का होंठ एक तरफ़ से हल्का टेढ़ा हो गया था। कामिल ने उस तरफ़ का हाथ देखा। हथेली की दो ऊँगलियाँ भी टेढ़ी थीं। कामिल ने उनकी हथेली पर अपनी हथेली रख दी।

''तुम रुको...'' भाई पीछे से आया, ''मैं अपने घर जाकर तुम्हारा खाना, कपड़े वग़ैरह ले आता हूँ।''

कामिल ने जीप की ताली उसकी तरफ़ बढ़ा दी।

''मोटर साइकिल घर पर है। यह तुम रखो। पता नहीं क्या ज़रूरत हो।''

कामिल ने सर हिला दिया।

''बड़े भय्या को बता देता हूँ।''

कामिल कुछ नहीं बोला। भाई चला गया। लड़कों ने कामिल को घेर लिया।

''तुम जाकर घर बन्द कर दो।'' कामिल ने एक लड़के से कहा, ''मून को

ढूँढ़कर यहाँ भेजो।'' कामिल ने दूसरे से कहा, ''और तुम दोनों यहीं रुको।''

दो लड़के चले गए। बाक़ी कमरे के बाहर पड़ी बेंच पर बैठ गए।

डाक्टर दवाएँ लेकर आया। कुछ उसने ग्लूकोस में डाल दीं। कुछ बूँदें मुँह मे डाल दीं।

''कब तक होश आएगा?'' कामिल ने पूछा।

''शाम तक आ जाना चाहिए। क्या हाई ब्लडप्रेशर के मरीज थे?''

कामिल कुछ क्षण चुप रहा फिर रुंधी आवाज़ में बोला,

''बचा लीजिए डाक्टर... जैसे भी।''

डाक्टर ने ऊँगली से ऊपर इशारा किया फिर चला गया।

शाम को उन्हें होश आ गया।

कामिल ने एक क्षण के लिए भी उनका सिरहाना नहीं छोड़ा था। कमरे के बाहर बैठे दो लड़के ज़रूरत की चीज़ें लाते रहे। भाई अपने घर जाकर खाना ले आया था। कुछ कपड़े, तौलिया, साबुन वग़ैरह भी। कामिल ने इमरजेंसी के बाहर बने छोटे से बग़ीचे में गुलाचीन के नीचे बैठकर खाना खा लिया था।

उन्हें जब होश आया सूरज डूबने वाला था। गंगा पार से लौटते परिन्दों से आकाश भरा था। लाल और सुनहरे आसमान से पतंगें उतरने लगीं थीं। उसके एक हिस्से पर चिमनी से उठते काले धुएँ के टुकड़े तैर रहे थे।

वह पहले कुछ कराहे, फिर उनके शरीर के एक अंग में जुंबिश हुई। उन्होंने आँखें खोलीं। बहुत थोड़ी। पहली नज़र उनकी कामिल पर पड़ी। कामिल थोड़ा झुका। उसने उनकी हथेली पर अपनी हथेली रख दी। उनकी आँखों में कोई भाव नहीं था। ख़ाली आँखें कमरे की धुँधली रोशनी में कामिल की आँखों से फिसलती हुई चली गईं। वे कुछ देर छत पर रुकीं, फिर दीवारों पर, फिर वापस कामिल पर लौट आईं।

कामिल उठकर बाहर बैठे डाक्टर के पास गया। उसकी ड्यूटी ख़त्म हो गई थी। वह जा रहा था। ड्यूटी पर आए नए डाक्टर को चार्ट में कुछ समझा रहा था। कामिल ने उसे बताया कि होश आ गया है। वह नए डाक्टर को साथ लेकर कमरे में आया। उसने झुककर उनकी नब्ज पर उँगली रखी। साथ की नर्स ने ब्लड प्रेशर नापा। वह चुपचाप भावशून्य आँखों से सब पर नज़रें घुमाते रहे। वह दो बार टेढ़े होंठ से कराहे। कुछ थूक निकला। कामिल ने तौलिए से थूक पोछ दिया।

''कैसे हैं?'' डाक्टर ने झुक कर तेज़ आवाज़ में उनसे पूछा। वह कुछ नहीं बोले।

''आपका नाम क्या है?'' डाक्टर ने पूछा।

वह कुछ नहीं बोले।

''इन्हें पहचानते हैं?'' डाक्टर ने कामिल की ओर इशारा किया।

उन्होंने सर घुमाकर कामिल को देखा फिर थक कर आँखें बन्द कर लीं।

''घबराओ मत'' डाक्टर ने कामिल के कन्धे पर हाथ रखा, ''शुरू में होता है। दो दिन में सबको पहचानने लगेंगे। अभी दवा की खुराक पहुँची ही कितनी है? उनके शरीर पर दवाओं का अच्छा असर दिखा है।'' उसने नए डाक्टर की ओर इशारा किया। ''रात को ड्यूटी पर यह रहेंगे। मैंने सब समझा दिया है। आप यहाँ रुकिए। कोई भी ज़रूरत हो सकती है। एक पलंग अभी ख़ाली है। आप उस पर सो भी सकते हैं। कल तक यहाँ और रखेंगे फिर उन्हें कमरे में भेज देंगे। आप कल एक प्राइवेट कमरा बुक करा लें। कम से कम सात दिन के लिए।''

कामिल चुपचाप सुन रहा था। भाई भी तब तक आ गया था। डाक्टर बता रहा था।

''बाद में आप उन्हें ले जाइएगा। यह अच्छी बात है कि बहुत हल्का आघात हुआ है। शायद कुछ दिन ज़बान से बहुत साफ़ न बोल पाएँ। शायद सीधे पैर न रख सकें। पर समय के साथ, दवाओं के साथ, वह भी ठीक हो जाएगा।'' डाक्टर चुप हो गया फिर मुस्कुराया। कामिल ने हाथ जोड़े।

''मैं सुबह आऊँगा। अभी खिलाना-पिलाना कुछ भी नहीं है। बाद में नर्स सब समझा देगी।'' वह चला गया। पीछे नर्स और नया डाक्टर भी।

वह थकान से आँखें बन्द किए हुए थे। कामिल फिर उनके पास रखी कुर्सी पर बैठ गया। भाई खड़ा था।

''तुम जाओ।'' कामिल ने उससे कहा, ''मैं रात में रुकता हूँ।''

''कल क्या लेता आऊँ?''

''कुछ नहीं... मून आ रहा है... दूसरे लड़के हैं। सब हो जाएगा। घर भी पास है।''

''कहो तो मैं कल छुट्टी ले लूँ।''

''नहीं.. सब हो जाएगा।''

''बड़े भय्या को बता दिया है। तीन दिन उनके किसी बड़े अफ़सर का दौरा है। नहीं आ पाएँगे। पूछ रहे थे रुपए कितने भेज दूँ।''

कामिल ने सर घुमा कर खिड़की के बाहर आसमान को देखा। उसका लाल और सुनहरा रंग ख़त्म हो गया था। वह हल्का स्लेटी रंग में बदल रहा था।

''चलता हूँ...'' भाई ने कहा।

कामिल ने सर हिला दिया। वह चला गया।

उन्होंने कराह कर आँखें खोलीं। कामिल को देखा। कुछ कहा। टेढ़े होंठ से कुछ लार गिरी। कामिल ने उसे पोछ दिया।

कामिल झुक गया उन पर। उसने कई बार सिनेमा में देखा था कि किसी की स्मृति चली जाने पर पुरानी बातें बोलो, या दिखाओ कुछ, तो उसकी स्मृति लौट आती है। कामिल ने कोशिश की। उनसे जाल की बात की, माँ के गिरने की बात की, मूर्ति की बात की, सोने के अंगूठे की बात की, भाँग का चूरन इशारे से रगड़ कर दिखाया। वह चुपचाप भावशून्य आँखों से कामिल को देखते रहे फिर कुछ कराहे या शायद बोले। कामिल झुका। उसने अपना कान उनके होंठों से हटा दिया। उसे कुछ सुनाई पड़ा। वह कुछ बोल रहे थे। कामिल ने सुना।

माँ...! माँ...!

दूसरे दिन उन्हें प्राइवेट कमरे में रख दिया गया।

यह चौदह बाई चौदह फिट का बड़ा कमरा था। कमरे में एक तरफ़ ऊँची, जालियों वाली खिड़की थी। दूसरी तरफ़ गुस्लख़ाना था। कमरे के बगल में एक बड़ी बालकनी थी जिसमें तख्त बिछा था। बालकनी से मिली हुई एक छोटी रसोई थी। बालकनी में सुबह की पूरी धूप आती थी।

कमरे में आने से पहले मून ने रसोई में ज़रूरत की सब चीज़ें रखवा दी थीं। भोजनालय के दो लड़के वहाँ छोड़ दिए थे जो रसोई में हर तरह का काम कर सकते थे। एक फोल्डिंग पलंग मोड़कर बालकनी में खड़ा कर दिया गया था। रात को कामिल इसे उनके पलंग के साथ लगा कर सोता था।

उनके बदन पर कड़वे तेल की मालिश होती। सुबह-शाम दो बार उनके लकवा ग्रस्त अंगों को गर्म पानी से सेंका और पोछा जाता था। वह बिस्तर पर ही अभी मल मूत्र त्याग करते। उनकी स्थिति में तेजी से सुधार होने लगा। शरीर में शक्ति भी लौट आई थी। तीन दिन बाद उन्होंने लोगों को पहचानना शुरू किया। कामिल को देख कर मुस्कुराए। ज़बान का टेढ़ापन कम हो गया था। शब्द साफ़ निकलने लगे थे।

''क्या हुआ?'' उन्होंने धीरे से पूछा।

''कुछ नहीं...'' कामिल खिलखिला कर उनके सिरहाने बैठ गया। उनके बालों पर हाथ फेरा उसने।

''बैठा दूँ?'' उसने पूछा।

''हाँ।''

कामिल उठा। हैण्डिल घुमा कर उसने पलंग को एक तरफ़ से ऊँचा कर दिया। सहारे से उनको बैठा दिया। उन्होंनें चारों तरफ़ नज़रें घुमायीं।

''क्या चाहिए?'' कामिल ने पूछा।

''चूरन नहीं लाए हो?''

बालकनी से मून हँसता हुआ अन्दर आया। पैर छुए उनके।

''ऊपर छत पर भाँग का एक पेड़ है... पत्तियाँ तुड़वा कर पिसवा दूँ?'' मून बोला।

''ऐसा करो डाक्टर अभी आएगा.. उससे पूछना... फिर जो वह कहे।'' कामिल ने कहा।

''बस इतना याद है कि खटोला लेकर घर आए थे फिर क्या हुआ?''

''फिर बेहोश हो गए तुम। थोड़ा ब्लड प्रेशर बढ़ गया था बस। अब सब ठीक है।''

''पर यहाँ क्यों लाए? कितना था ब्लड प्रेशर?''

''बहुत था। 120 और 170।''

''गांधी जी का तो हमेशा इतना रहता था। सब काम करते थे। सुशीला नैय्यर रोज़ नापती थी।''

''अब तुम गांधी नहीं हो तो हम क्या करें?''

''कब तक रखोगे यहाँ?''

''अरे मैं तो अभी ले चलूँ... डाक्टर तो छोड़ें।''

''साले चूतिया हैं। तुम ले चलो।'' उन्होंने उठने का उपक्रम किया, ''गांधी की बात बताओ उन्हें।''

''अब यह सचमुच ठीक हैं बिल्कुल।'' कामिल ने मून से कहा। ''मुँह से श्लोक निकलने लगे। गांधी याद आने लगे।''

वह बहुत ख़ुश था।

''कितने दिन हुए?'' उन्होंने पूछा।

''पाँच।''

''कौन था यहाँ?''

''हम सब हैं। भाई भी आता रहा।''

''बड़का भी?''

''नहीं। वह फँसे थे ज़रा किसी काम में। अनार का रस पिओगे?'' कामिल ने पूछा, फिर मून को इशारा किया।

एक लड़का कुछ देर में रस ले आया। उन्होंने गिलास से एक घूँट भरा।

''खट्टा है।''

''थोड़ा ग्लूकोस मिला दो।'' मून ने लड़के से कहा।

पास ही मेज़ पर ग्लूकोस था। लड़के ने एक चम्मच डाल दिया। वह आवाज़ करते हुए रस पीने लगे।

कुछ देर तक रस पीने के बाद उन्होंने अपने बाएँ हाथ की तरफ़ इशारा किया

''इसमें ताक़त नहीं लगती।''

''कुछ दिनों में लगेगी। एक पैर भी अभी सीधा नहीं पड़ेगा। पर सब बिल्कुल ठीक हो जाएगा।''

''मैं मूर्ति तो बना पाऊँगा न?''

''सब बना पाओगे।'' कामिल ने फिर उनके बालों में हाथ फेरा। उनसे ख़ाली गिलास ले लिया।

''अब लेटूँगा।'' गिलास देकर उन्होंने कहा।

कामिल ने ख़ाली गिलास मून को पकड़ा दिया। हैण्डिल चला कर उसने पलंग नीचे कर दिया। उनके चेहरे पर थकान आ गई थी।

तभी पर्दा हटा कर कामिल का भाई अन्दर आया। उसके हाथ की टोकरी में फल थे। पीछे उसकी पत्नी भी थी। उसने आगे आकर पैर छुए उनके। उन्होंने उसे भी पहचाना।

''तुम बैठो।'' कामिल ने भाई से कहा, ''बड़े डाक्टर के राउण्ड में अभी समय है... मैं कुछ देर कचहरी होकर आता हूँ।'' भाई ने सर हिला दिया।

कामिल मून को लेकर कमरे से बाहर चला गया।

''जल्दी आना।'' पीछे से उसने उनकी हाँफती आवाज़ सुनी।

डाक्टर के आने के पहले ही कामिल लौट आया। मून भोजनालय में ही रुक गया था। कामिल के आते ही भाई और उसकी पत्नी चले गए।

डाक्टर दोपहर का आख़िरी राउण्ड लगाने आया। उसने चार्ट देखा। उनकी नब्ज़ देखी। माथे पर हाथ रखकर हाल पूछा।

''घर जाना है।'' उन्होंने डाक्टर से कहा।

''क्या करेंगे घर पर... यहाँ क्या तकलीफ है?''

''अच्छा नहीं लगता...।''

''हमें भी आपको यहाँ रखना अच्छा नहीं लगता। पर आपको तभी छोड़ेंगे

जब आप ख़ुद थोड़ा चलने लगेंगे.. ख़ुद बाथरूम जाने लगेंगे।''

''वह तो मैं अभी कर सकता हूँ।'' वह उठने लगे।

''लेटे रहिए... कल सुबह से शुरू करिए।'' डाक्टर कामिल की तरफ़ घूमा, ''कल से इन्हें थोड़ा चलाइए... पहले सहारा देकर, फिर अकेले। अकेले बाथरूम जाने दीजिए पर दरवाज़े खुले रखिए। दिन में दो बार कुछ एक्सरसाइज़ करवानी होगी। उँगलियाँ जब मन हों तब चलाएँ। देखते हैं फिर। मुझे लगता है तीन दिन बाद आप इन्हें ले जा सकते हैं।''

डाक्टर फिर उनके चेहरे पर थोड़ा झुका।

''तीन दिन बाद आप घर चले जाएँगे। हमें पता है हमारा अस्पताल किसी को अच्छा नहीं लगता।''

''मैं ठण्डाई पी लूँ... ? एक चवन्नी हरी पत्ती डालकर ?'' उन्होंने आँखें नचाईं।

''मैं जब आपके घर आऊँ तब। मैं भी साथ पिऊँगा।'' वह मायूस हो गए। सर हिला कर उन्होंने चेहरा दूसरी तरफ़ कर लिया।

डाक्टर कामिल के कन्धे पर हाथ रख कर उसे कमरे के बाहर के चौड़े गलियारे में ले आया।

''यह कभी भी अचानक किसी बात की ज़िद कर सकते हैं। कुछ भी माँग सकते हैं। इस बात का ख़ास ध्यान रखना कि जहाँ तक हो उनकी इच्छा पूरी कर दो। ऐसा नहीं हुआ तो वह उसी के बारे में सोचते रहेंगे। तनाव बढ़ता रहेगा। अभी ब्रेन का एक हिस्सा नाज़ुक है।''

कामिल ने सर हिलाया। डाक्टर चले गए।

तीन दिन में वह सहारा छोड़कर धीरे-धीरे चलने लगे। बाथरूम के अन्दर अकेले बैठने लगे। खुले दरवाज़े के पास कामिल खड़ा रहता। कामिल बाद में उन्हें नहला देता। नहाने के बाद उनके लम्बे बालों में तेल लगाकर, कंघी करके उन्हें बालकनी की धूप में बैठा देता। वहीं मेज़ पर उनका नाश्ता लगता। उत्फुल्ल मन से वह सुबह की धूप देखते, फलों का रस पीते... नए व्यंजन खाते।

शंकरिया दो बार उन्हें देखने आया। वे चारों न्यायाधीश भी आए। धर्मस्थल के पेशकार, मुंशी, टाइपिस्ट भी देखने आए। एक बार मादल भी आया।

जब वह चलने-फिरने लगे तो भाई ने आना बन्द कर दिया। डाक्टर का राउण्ड ख़त्म हो गया। उसकी तरफ़ से कामिल जब चाहे उन्हें डिस्चार्ज करा कर ले जा सकता था।

कामिल उन्हें घर ले आया।

अपनी कोठरी में पहुँच कर उनकी आँखें चमकने लगीं। अपने पलंग पर वह

हाथ पैर फैला कर लेट गए।

''यह घर क्यों नहीं छोड़ देते?'' उनके गले तक चादर ढकते हुए कामिल बोला, ''विक्टोरिया मिल के पुराने ख़ाली बंगलों में से एक बड़ा बंगला एलाट करवा लेता हूँ। आराम से रहना। यह सीढ़ी चढ़ने-उतरने का चक्कर भी ख़त्म हो जाएगा।''

''क्या करेंगे बड़े घर का?''

''एक कमरे में सोना, एक में खाना, एक में काम करना, एक में लोगों से मिलना।...बाहर बग़ीचे में घूमना... पीछे आँगन में खेती करना...''

''नहीं...'' उन्होंने तेज़ी के साथ कई बार सर हिलाया, ''यहाँ से नहीं ले जाना कहीं।'' उनके चेहरे पर भय और तनाव आ गया।

कामिल डर गया।

''कहीं नहीं जाएँगे। यहीं रहेंगे हमेशा।'' कामिल ने उनके कान में कहा।

उनकी आवाज़ की कड़क थोड़ी कम हो गई थी। बोलते समय ज़बान थोड़ी अटकती थी। इसका कोई दुख नहीं था उन्हें। हाथ की उँगलियाँ पूरी तरह सीधी नहीं हुई थीं अभी। उस हाथ में ही वह पतला चाकू पकड़ते थे। डाक्टर ने कहा था उँगलियाँ चलाते रहने से वे भी ठीक हो जाएँगी। पलंग पर लेटे, बैठे वे मुट्ठी खोलते बन्द करते रहते थे।

सुबह मालिश वाला आता था। दो बार खाना बनाने वाली आती थी। कामिल उनका पूरा काम करने के बाद धर्मस्थल आता था। अपने पीछे भी वह किसी न किसी लड़के को बैठा जाता। वह समय पर दवा देता। वह जो चाहते लाकर देता। कामिल बीच में जब भी मौक़ा मिलता उनसे मिल लेता। उनके बाल सहला देता। उनसे बात कर जाता।

अस्पताल में वह बाथरूम चले जाते थे क्योंकि वह पास था। पर यहाँ दिक़्क़त थी। पूरी कोठरी, फिर लम्बी खुली छत पार करने के बाद सीढ़ियों के पास गुस्लख़ाना और पाखाना था। उतनी दूर वह चल नहीं पाते थे। उन्हें सहारे की ज़रूरत होती थी। कामिल सुबह उन्हें सहारा देकर वहाँ तक ले जाता। दरवाज़े पर छोड़कर बाहर खड़ा रहता। यही दिक़्क़त उन्हें पेशाब करने में होने लगी। उसके लिए एक बड़ा पॉट पलंग के नीचे रख दिया गया था। वह उठते। उसी में पेशाब कर देते। कामिल उसे फेंक आता। एक बार पॉट भर जाने के बाद कामिल को उसे फेंककर ख़ाली करना पड़ता। तब वह दूसरी बार उसमें कर पाते।

कामिल को अक्सर वह बीच रात में बहुत धीमी आवाज़ देते। पहली बार

में ही कामिल उठ जाता। पेशाब रोकने के दबाव से उन्हें पाखाने की इच्छा भी होने लगती। वह कामिल को चुपचाप देखते। कामिल समझ जाता।

''जाना है?'' वह पूछता।

''देख लेते हैं।''

कामिल उठाता उन्हें धीरे से सहारा दे कर। कोठरी, खुली छत पार करके सीढ़ियों के पास बने पाखाने में ले जाता। फिर सहारे से उन्हें बैठा देता। अजीब सी मुद्रा में एक पैर फैलाकर वह बैठ जाते। कामिल बाहर खड़ा हो जाता।

एक बार उन्होंने कामिल को आवाज़ दी। कामिल उन्हें उठाने अन्दर गया

''नहीं!'' उन्होंने थकी, टूटी आवाज़ में कहा, ''लगता है सूख गया है बिल्कुल। मुँह पर रुका है।''

''कोशिश करो।''

''वही कर रहा हूँ। अब ताक़त नहीं लगती।''

कामिल ने एक क्षण देख उन्हें फिर उनके पीछे जाकर झुक गया। अपनी उँगली अन्दर डाल कर उसने फँसा, सूखा मल बाहर निकाल लिया... फिर इसे दोहराया।

''अब?'' कामिल ने पूछा।

''अब ठीक है।''

कामिल ने उन्हें सहारे से उठा दिया। उनको साबुन से धोया। अपने हाथ धोए। उन्हें वापस लाकर कोठरी में लिटा दिया।

हर दो-तीन दिन में वह रात को कामिल को आवाज़ देने लगे। ज़रा सा भी अंदेशा होता कामिल को जगा देते। रात में, कभी दिन में कामिल को उँगली से उनका मल निकालना पड़ता।

कामिल की नींद अब पूरी नहीं होती। लगभग एक महीने से वह ठीक से सोया नहीं था। रातों को तो बिल्कुल भी नहीं।

पाखाने से लौट कर उन्हें नींद नहीं आती। वैसे भी रात को वह कभी नहीं सोए थे। बहाने से कामिल को जगाए रखते। उससे तम्बाकू बनवाते... कभी पानी माँगते, कभी बातें करते रहते। बहुत बातें करने लगे थे। बहुत देर तक करने लगे थे। उन बातों में स्मृतियों के उलझे हुए गहरे जाले होते। उन जालों में कुछ भी फँस कर उनके अन्दर झूलने लगता। आधे अधूरे टुकड़ों में, स्मृति भंग के साथ धुँधलाए चित्र होते। लोग होते। धुँआरे, छज्जों और नक्काशी किए पत्थरों के दरवाज़ों वाले मकान, कुँए, मशक वाले भिश्ती, रंगीन लट्टू, झूले के लिए रेशम और ज़री के कपड़ों वाली चाँदी की पट्टियाँ, अहातों में काँच के बुरादे से सूते जाते रंगीन माँझे, पहाड़ी बिच्छुओं का तेल बेचता आदमी, पीले कपड़े पहने जोगी, काले कपड़ों वाले सँपेरे,

चाँदी के रुपए, तवायफ़ों की वफ़ा, लड़कियाँ, नृत्य, संगीत की बेमुशार रातें, अखाड़े की कुश्तियाँ, संस्कृत के श्लोक, आवारा रातों के पलों में जन्मी कला की दार्शनिक व्याख्याएँ। निष्पाप, निष्कलंक, प्रतिबद्ध, समर्पित, एकनिष्ठ एकाकी जीवन की यात्रा के कुछ उभरे टीले, जिन पर बैठ कर वह सुस्ताते रहते।

एक रात कामिल सोया ही था। उन्हें उनकी भिंची-भिंची आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने कामिल को आवाज़ नहीं दी थी, पर कुछ उनके मुँह से निकल रहा था। कामिल उठा। उनके पास आया। उनकी आँखें पूरी खुली थीं। कामिल को देखकर उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया।

''ऐसा मत करो।''

''क्या?'' कामिल सिरहाने बैठ गया।

''तुमने कहा था न माँ के दर्शन कराओगे? क्यों नहीं लाते उसे यहाँ या मुझे ही ले चलो।''

कामिल चुपचाप उन्हें देखता रहा।

''इसीलिए कुछ नहीं रचा जा रहा है। फिर देख भी लेता। मेरे बाद वही तुम्हारी रक्षा करेगी। तुम्हें पालेगी... सुखी रखेगी।''

''ले आऊगाँ...'' कामिल ने उनकी हथेली थपथपायी।

'नहीं। अभी... अभी माँ की लाओ। तुम कहना, मैंने बुलाया है। वह आ जाएगी।''

''पर अभी बहुत रात है।''

वह एकदम चुप हो गए। बस कामिल को देखते रहे। उन आँखों में गहरी शिकायत, अविश्वास और भर्त्सना थी। वह धीरे-धीरे कुछ बड़बड़ाने लगे। शब्द बाहर नहीं आ रहे थे। कुछ लार थी, कुछ आसूँ। वह अपने उस हाथ और पैर को हिलाने लगे जिस पर पक्षाघात हुआ था। उनका चेहरा धीरे-धीरे काला होने लगा। कामिल ने घड़ी देखी। सुबह का दो बज रहा था।

अपनी हथेली पर कामिल ने उनका हाथ महसूस किया। वह अपने एक हाथ से कामिल को ढकेल रहे थे। ''अभी...अभी...''

कामिल उठ गया।

''ठीक है... लाता हूँ। तुम आराम करो। सोचो मत कुछ।''

उनका चेहरा धीरे-धीरे शान्त हो गया। देह भी। उनकी आँखों में चमक और उल्लास भी लौट आई।

कामिल ने जीप की चाभी उठायी, रुपए उठाए और तेज़ी से दौड़ता हुआ सीढ़ियाँ उतरा। अब वह जीप घर के नीचे ही खड़ी रखता था। जीप स्टार्ट करके वह दाक्षायणी

के घर की तरफ़ भागा।

दाक्षायणी का घर अंधेरे में डूबा था। बाहर के दरवाज़े पर ताला बन्द था। कामिल ने जीप एक ओर खड़ी की। दरवाज़े के पत्थर के पिलर पर चार खूँटे लगे थे। खूँटों पर पाँव रखकर वह दरवाज़े पर चढ़ा और अन्दर कूद गया। अमरूद और नींबू के नीचे बिखरे स्लेटी अन्धेरे को पार करके वह पहले कमरे के दरवाज़े पर आ गया। बाहर बल्ब जल रहा था। दरवाज़े के शीशे से झाँका उसने। कमरे में अन्धेरा था। अन्दर थोड़ा दिखते हुए दूसरे कमरे में भी अन्धेरा था। कामिल ने दरवाज़े पर लगी घंटी बजायी। एक बार, दो बार, तीन बार। अन्दर कोई और भी था। कुछ बोलने की आवाज़, कुछ आहट हुई। फिर अन्दर वाले कमरे की बत्ती जली। कुछ ही क्षण में दाक्षायणी दिखी। नींद में डूबी आँखों से उसने वहीं से बाहर के दरवाज़े पर देखा। कामिल थोड़ा झुक गया जिससे वह उसका चेहरा शीशे से पूरा देख सके। दाक्षायणी ने उसे देख लिया। आँखों में गहरा आश्चर्य लिए वह कमरे में आई। शीशे के पार उसने कामिल को एक बार देखा, फिर दरवाज़ा खोल दिया।

कामिल अन्दर आ गया। दाक्षायणी कुछ क़दम पीछे हट कर खड़ी हो गई।

''तुम्हें चलना होगा मेरे साथ।'' कामिल बोला।

''कहाँ?''

''मेरे घर।''

''क्यों?''

''मैंने पहले भी तुम्हें बताया था। बाबू एक बार तुम्हें देखना चाहते हैं।''

''क्यों?''

''माँ के दर्शन करने की रट लगा रखी है। डाक्टर ने कहा है कि उनकी हर बात मानो। तुम चलो एक बार। मैं अभी छोड़ जाऊँगा तुम्हें।''

''नहीं।...'' दाक्षायणी और एक क़दम पीछे हट गई।

कामिल अवाक्, फटी आँखों से दाक्षायणी को देखता रह गया। उसकी नींद से भरी आँखों में भी गहरा पैनापन था। खुले बालों के पीछे साँवले चेहरे पर गहरी दृढ़ता और शान्ति थी।

''तुमसे मैंने पहले भी पूछा था। तुम्हारा पिता अगर मेरा पुत्र है तो तुम मेरे क्या हो? तुमने तब भी कुछ नहीं बताया था। आज भी वही सवाल है। मेरा तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? तुम मेरे क्या लगते हो? पहले इस प्रश्न का उत्तर देना होगा तुम्हें! अगर तुम बता पाए कि मेरे क्या हो, मैं अभी इसी क्षण चलूँगी तुम्हारे साथ। ऐसे ही जैसे खड़ी हूँ।''

कामिल कुछ नहीं बोला। दाक्षायणी मुस्कुराती हुई कामिल को देख रही थी।

उसकी आँखों में भर्त्सना थी, विजय का भाव था, अपनी शक्ति और सत्ता का बोध था।

"मैं जानती हूँ तुम कभी नहीं बता पाओगे, क्योंकि तुम मेरे कभी कुछ थे ही नहीं। जाओ, जाकर अपने पिता से पूछो। शायद वह तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर दे दें। अगर उत्तर मिले तब आना मेरे पास। जब, जैसे, जहाँ कहोगे तुम्हारे साथ चली चलूँगी। पर अभी नहीं।" दाक्षायणी की आँखों में अब हल्का पानी था। करुणा थी... दुख था।

कामिल एक क्षण रुका फिर चुपचाप बाहर चला गया। कामिल घर पहुँचा।

जीप एक ओर खड़ी करके वह सीढ़ियों से ऊपर चला गया। दूर से देखा उसने। कोठरी के अन्दर पलंग ख़ाली था। वह तेज़ी से कोठरी में आया। दीवार के साथ लगे फर्श पर वह लुढके पड़े थे। हाथों में मिट्टी थी। मिट्टी के लोंदे पर एक चेहरा बना था। कामिल ने उसे पहचान लिया।

यह दाक्षायणी का चेहरा था।

चार

कामिल की आख़िरी चिट्ठी दिसम्बर, 1984 में मिली। छोटे से काग़ज़ पर लिखी हुई!...

"लगता है जीवन का एक चक्र पूरा हुआ बिजन। जहाँ से शुरू किया था फिर वहीं पहुँच गए।

संदेह अमर है, शाश्वत है। उसे हमेशा के लिए ख़त्म करके कोई अन्तिम सत्य कभी जन्म नहीं ले सकता। हमारे जन्म के साथ ही पहला प्रश्न जन्मता है 'मैं कौन' और मृत्यु के साथ ही अंतिम प्रश्न 'अब कहाँ'? संदेह से संदेह तक की यह अनवरत चलने वाली यात्रा ही शायद हमारा जीवन है। और संदेह ही क्यों बिजन? मुझे तो लगता है जैसे यह पूरा जीवन ही किसी धर्मस्थल में चलने वाली लम्बी सुनवायी है। इसमें आरोप हैं, साक्षी हैं, प्रमाण हैं, जिरह हैं, कानून की धाराएँ हैं, कारागार हैं...दण्ड हैं। और फिर सबसे अन्त में किसी धर्माधिकारी का अन्तिम निर्णय है। तुम मुक्त, तुम आजीवन, तुम मृत्युदण्ड, तुम काला पानी, तुम...तुम...। और फिर अपील, फिर सुनवाई।

जानते हो बिजन, राजा नन्दकुमार का मुक़दमा जब शुरू हुआ तो पहला वाक्य उसी ने कहा 'यह दुभाषिया इलियट मेरे प्रति दुश्मनी रखता है। अविश्वसनीय है। पता नहीं किस बात को, किससे, कैसे कहेगा?' इम्पे ने उसकी बात नहीं मानी। हमारे जीवन के मुक़दमे में तो कोई दुभषिया ही नहीं है बिजन। एक जो कह रहा है, दूसरा उसे समझ ही नहीं पाता है। मेरा बोला शब्द तुम तक आते अपना अर्थ खो देता है। तुम जो ग्रहण करते हो, वह मैंने बोला ही नहीं होता। सोचो बिजन, बग़ैर किसी दुभाषिए के, इन अनन्त भाषाओं में की जाने वाली सुनवाई में क्या कुछ भी अन्तिम, दोष रहित, पक्षपात विहीन, निर्णय होगा? शायद नहीं। मैंने देखा है बिजन, धर्मस्थल में मरते हुए, अदालतों

में सुनवाइयों में भागते हुए, धीर-धीरे नष्ट होते शरीरों को, आत्माओं को। उनके जीवन की सारी चमक बुझ जाती है। सारी आस्थाएँ, सारे विश्वास नष्ट हो जाते हैं। काल निर्बाध गति से उन्हें रौंदता रहता है, पर उनकी सुनवाई कभी ख़त्म नहीं होती। मैं भी थक गया हूँ किसी धर्मस्थल में चलने वाली अपने जीवन की इस सुनवाई से। जिरह, बयान, आरोप, प्रमाण, तर्क से... बहुत थक गया हूँ बिजन। मुक्ति चाहता हूँ। याद है, बाबू ने पहली रात तुमसे क्या कहा था? जब ऐसा लगे कि कहीं शरण नहीं है, कहीं दुख से मुक्ति नहीं है, तो किसी विराट के पास चले जाओ। वह तुम्हें अपने अन्दर समेट लेगा। मैं भी किसी विराट के पास जाऊँगा बिजन। नदी नहीं, वृक्ष नहीं, जंगल नहीं। इन सबकी सीमाएँ हैं। ऐसा विराट जिसका न आदि, न अन्त, न जन्म, न मृत्यु... न क्षरण... न मरण... एक आलोकित हिरण्यगर्भ... एक अमृतकुण्ड। मृत्यु से विराट क्या है बिजन?

इसके बाद मुझे बहुत समय तक कामिल का कोई पत्र नहीं मिला। ऐसा अक्सर होता था। कामिल कई बार पूरे साल तक कोई पत्र नहीं लिखता था। पर जब उसका पत्र मिलता तो मुझे उसके पूरे जीवन के बारे में मालूम हो जाता। जैसे चित्र की तरह सब आँखों के सामने घटित हो रहा है।

एक साल बाद मुझे चिन्ता हुई। मैंने कामिल को पत्र डाला। कोई उत्तर नहीं आया। मेरे पास कोई सूत्र नहीं था जिससे मैं कामिल के बारे में मालूम कर सकता। दो साल बीत गए। मुझे गहरी चिन्ता हुई। एक दिन मैंने मून भोजनालय के नाम पत्र लिखकर डाल दिया। पते पर मैंने कचहरी गेट, जेल के सामने लिखा। पत्र में मैंने मून को अपनी याद दिलायी।

उसे पूरी तरह समझा कर लिखा कि वह तार घर जाकर मेरा लिखा हुआ टेलीफ़ोन नम्बर वहाँ बैठे आदमी को दे दे। वह ख़ुद फ़ोन मिला कर दे देगा। वहाँ सुबह पाँच से आठ या शाम को छह से दस के बीच जाए। मैंने यह भी बता दिया कि पैसे ज़्यादा ले जाए। पत्र मिलते ही बात करे। मुझे उम्मीद थी कि मेरा पत्र मून को मिल जाएगा। कामिल की बातों से लगता था कि मून भोजनालय और मून, दोनों को कचहरी में सब जानते हैं। जेल के सामने का धर्मस्थल का दरवाज़ा एक पक्का लैण्डमार्क था।

एक शाम मैं खिड़की पर बैठा गिरती हुई बर्फ़ देख रहा था। रुई के फाहों

की तरह यह बर्फ़ तीन दिन से रुक-रुक कर गिर रही थी। तभी मेरे फ़ोन की घंटी बजी। मैंने फ़ोन उठाया। उधर से कोई आवाज़ नहीं आई। मैंने फिर हलो कहा। फिर चुप्पी रही... कुछ क्षण बाद उधर से बहुत धीमी, सहमी सी आवाज़ सुनाई पड़ी

"भूरी।"

"हाँ ... मून... मैं भूरी ... बोलो मून।"

"मैं मून बोल रहा हूँ।" उधर से आवाज़ आई।

"हाँ हाँ बोलो मून... कैसा है कामिल?"

कुछ क्षण चुप्पी रही फिर उधर से आवाज़ आई।

"तुम एक बार आ जाओ भूरी।"

मैं चुप हो गया। फिर पूछा मैंने...।

"क्या हो गया?"

"तुम एक बार आ जाओ.. बस।"

"कहाँ है कामिल?"

"जेल में।"

"क्यों?"

आवाज़ ज़्यादा साफ़ नहीं थी। मैं घबरा रहा था, कहीं मून फ़ोन न काट दे।

"सुनो मून।" मैं तेज़ आवाज़ में बोला, "मैं आता हूँ... तुम मुझे दो दिन बाद इसी समय फ़ोन करो। इसी तरह। मैं तब तुम्हें बताऊँगा कि मैं कब पहुँच रहा हूँ। सुन रहे हो न?"

"हाँ भूरी.. मैं परसों फ़ोन करता हूँ। पर तुम आ जाना।" उधर से जैसे मून रोने लगा। उसने फ़ोन रख दिया।

दो दिन बाद फिर मून का फ़ोन आया।

"तुम आ रहे हो न भूरी?"

"हाँ। मैं आज से पाँच दिन बाद, यानी अठारह तारीख़ की सुबह के बाद तुम्हारे भोजनालय किसी भी समय पहुँचूँगा।"

"मैं तुम्हें लेने स्टेशन आ जाऊँगा।" मून बोला, "किस गाड़ी से आओगे?"

"तुम कहीं मत आना। बस वहाँ से मत हटना। मैं वहाँ और किसी को नहीं जानता।"

"मैं तुम्हारे रुकने का इन्तजाम करता हूँ।"

"मैं कर लूँगा।"

मून एक क्षण चुप रहा।

"कामिल को बता दूँ?"

"क्या?"

"तुम आ रहे हो।"

"कैसे बताओगे?"

"जेल में ही तो है।"

"उससे मिलने के लिए मैं तुम्हें कितना पहले बताऊँ?"

"चार घंटे।"

"उसे कुछ मत बताना।" मून ने फ़ोन रख दिया।

18 तारीख़ को स्टेशन पर पहुँच कर मैंने टैक्सी ले ली। उसे जेल के सामने कचहरी का फाटक बता दिया।

मून मुझे फाटक पर ही खड़ा दिख गया। वह बहुत बदल गया था। मजबूत शरीर का हो गया था। चेहरे पर कोई ज़्यादा फ़र्क़ नहीं आया था। वह हर आने जाने वाले को ध्यान से देख रहा था।

मेरी गाड़ी रुकी तो वह भाग कर आया। मैं दरवाज़ा खोल कर बाहर निकला। मून मुझे कुछ क्षण देखता रहा।

"भूरी।" वह धीरे से बोला।

मैं हँसा। मून तेज़ी से मेरी ओर लपका। वह गले मिलना चाहता था पर पास आकर झिझक गया। मैंने हाथ बढ़ाकर उसे गले से लगा लिया, "बिल्कुल नहीं बदले। तुम्हारी आँखें वैसी ही है।"... मून भर्राई आवाज़ में बोला।

"तुम भी नहीं बदले।"

"...बहुत अच्छा किया तुम आ गए।" अलग होते हुए कहा उसने "सामान कहाँ है।" उसने अन्दर झाँका।

"स्टेशन पर ही क्लॉक रूम में अभी रख दिया है। एक बैग डिकी में है। ज़रूरत की सब चीज़ें हैं उसमें।"

"आओ।" मून ने मेरा हाथ पकड़ लिया, "यह?" उसने टैक्सी की ओर इशारा किया।

"यह रहेगी।"

"तुम कहाँ रुकोगे... नहाओ खाओ कुछ। मैं ले चलता हूँ अपने घर।"

"मैंने ट्रेन में सब कर लिया है... रुकने का देख लूँगा। अभी चलो, बैठो मेरे साथ।"

मून मुझे अपने भोजनालय में ले गया। मैंने दरवाज़े पर रुककर देखा। सब कुछ वैसा ही था जैसा कासिल अपने पत्रों में लिखता था। लकड़ी की मेज़ें... लोहे की कुर्सियाँ, खूँटियों पर टंगे कपड़े, दीवारों पर हरा रंग, कई देवताओं की तस्वीरें...

लट्ठों पर टिकी फूस और टीन की छत, कोने के नल पर बरतन धोते लड़के ... अन्दर भट्ठी की धुआँ...।

''अन्दर बैठते हैं, वहाँ कोई नहीं आएगा.. मैंने तुम्हारे लिए खास खाना बनाया है। ख़ुद अपने हाथों से।'' मून ने मेरा हाथ फिर पकड़ लिया। मुझे अन्दर के छोटे से कमरे में ले गया। यहाँ मेज़ कुर्सी पड़ी थी। एक छोटा सोफा था। गद्देदार कुर्सी थी। लोहे की अलमारी थी।

''कामिल यहीं बैठता था... उसका दफ्तर समझो।'' मून ने मुझे गद्दे वाले कुर्सी पर बैठा दिया। ख़ुद सोफे पर बैठ गया।

मैंने कमरे पर एक निगाह डाली फिर सामने खिड़की से देखा। जेल की दीवार पर छाँह गिर रही थी। पूरी दोपहर थी। तेज़ धूप थी। नीम के पेड़ पर कुछ कौए चीख़ रहे थे।

''मरो सालों!'' मून के भोजनालय से एक लड़के ने प्लेटों के बचे हुए खाने के टुकड़े फेंक दिए। कौओं का झुंड चीख़ते, पंख फड़फड़ाते उतरा और उन टुकड़ों पर टूट पड़ा। मून ने बोलना शुरू किया।

''कामिल ने बाबू की लाश उठने के बाद कोठरी का दरवाज़ा बन्द कर दिया। उसे फिर कभी नहीं खोला। सबसे बड़े भाई भी आए। सब तीन दिन रुके फिर चले गए। कामिल के भाई ने अपने कमरे का ताला खोल दिया था। कामिल वहीं रहने लगा। बहुत बार मुन्नी के घर पर रुक जाता था। वह बड़ा चुप हो गया था। बहुत कम बात करता था। यहाँ आता, इस कमरे में घंटों बैठता, पर मुझसे भी कम बोलता। पता नहीं उसके मन में क्या था। उसके चेहरे पर एक ठण्डापन और खिंचाव रहने लगा था। उसने अचानक कुछ नए काम शुरू कर दिए। बहुत तेज़ दौड़ने लगा वह। जैसे किसी लम्बी दौड़ में शामिल है और उसे जीतना है। शंकरिया के साथ उसका ज़्यादा उठना-बैठना होने लगा। ज़मीनों पर क़ब्ज़ा, झूठी रजिस्ट्री... ट्रकों का माल ग़ायब करना जैसे कामों में शामिल हो गया। यहाँ, जहाँ तुम बैठे हो, इसी कुर्सी पर वह बैठता था। मैं यहीं, जहाँ बैठा हूँ। मैंने उसे कई बार समझाया और पूछा भी, किसके लिए इतना सब कर रहे हो? कौन है तुम्हारी ज़िन्दगी में? कहाँ जाओगे? वह कुछ नहीं बोलता। जब भी मैं ऐसी बातें करता वह किसी बहाने से उठ जाता। मुझे लगने लगा, वह जैसे किसी से बदला ले रहा है या किसी को अपने पाँवों से रौंद रहा है। कहीं बहुत गहरी कोई घृणा है किसी के लिए जिसे वह इस तरह व्यक्त कर रहा है। पता नहीं। शायद बाबू की मौत या दाक्षायणी या ख़ुद अपने आपसे या यह धर्मस्थल। पर जिस तरह वह दौड़ रहा था, उसे गिरना ही था। वही हुआ। एक दिन शंकरिया के सबसे ख़ास आदमी, कह लो दाहिना हाथ ही, उसकी पेशी थी।

दस महीने से वह जेल में बन्द था। पेशी से दो घंटे पहले बिना रवानगी दिखाए उसे जेल से छोड़ दिया गया। शंकरिया को कुछ बात करनी थी। सामने मन्दिर के पास एक होटल में ऊपर अकेले में कामिल ने उनके मिलने का इन्तजाम किया। कामिल भी शंकरिया के साथ चला गया। दो पुलिस वाले उसे हथकड़ी में लाए। होटल में आने के बाद उसकी हथकड़ी खोलकर उसे ऊपर भेज दिया। नीचे वे पुलिस वाले बैठे रहे। नीचे कुछ और लोग भी थे। ऊपर शंकरिया और कामिल थे। वह शंकरिया से गले मिला और वहीं उसने जेब से रिवाल्वर निकाल कर शंकरिया को गोली मार दी। रिवाल्वर फेंक कर वह नीचे भागा। नीचे पुलिस वालों के साथ एक गाड़ी में बैठा और जेल पहुँच गया। एक घंटे बाद पेशी के लिए उसकी जेल से रवानगी दिखा दी गई। इधर गोली लगते ही शंकरिया गिर पड़ा। कामिल कुछ समझता तब तक नीचे बैठा एक दरोगा भागता हुआ ऊपर आया। उसने कामिल को पटक कर उसके हाथों को हथकड़ी में कस लिया। रिवाल्वर जमा कर ली। कामिल को घसीट कर नीचे वह लाया तो भीड़ थी। बाहर कुछ पुलिस वाले और थे। वे कामिल को शंकरिया के क़त्ल में गिरफ़्तार करके ले गए।'' मून ने एक गहरी साँस ली, ''अलग-अलग बातें कहते हैं लोग। कोई कहता है कामिल प्रशासन की आँखों में खटकने लगा था। कोई कहता है शंकरिया के गिरोह पर क़ब्ज़े की लड़ाई में शंकरिया मारा गया। कोई दुश्मन गिरोह की बात करता है। कभी चुपचाप यह भी सुनने में आता है कि मादल ने करवाया है जिससे कि वह उसके क़ैदियों वाले पूरे काम पर क़ब्ज़ा कर सके। मुझे लगता है यही हुआ भी है। अब वह पूरा काम मादल देखता है। मुन्नी ने वकील किए हैं। पर कामिल में ख़ुद ही छूटने की इच्छा नहीं है। वह अब पहले की तरह शान्त, ख़ुश दिखता है। यहाँ हथकड़ी में आता है तो बम पुलिस के पास कमरे में ठूँस दिया जाता है। मैं उसके लिए खाना ले जाता हूँ। वह हँसता है और मुझे आने के लिए मना करता है। तुम्हें दुख होता है मून। मत आया करो। मैं उसका हाथ पकड़ कर सलाखों पर सर पटकता हूँ भूरी।'' मून की आँखें गीली हो गईं। ''जेल में कामिल को कोई तकलीफ नहीं है। पूरा खाना यहाँ से जाता है। धुले कपड़े-बिस्तर जाते हैं। किताबें जो माँगता है उसे मिल जाती हैं। कभी तो मुझे लगता है कि अच्छा ही है वह जेल में है। कोई तकलीफ नहीं है। छूटे भी तो बाहर क्या करेगा? यहीं, इसी कचहरी की गलीज़ में घँसेगा। यही कीचड़ ढोएगा। वहाँ वह पुराना कामिल लगता है। सीधा, हँसमुख और मन का सच्चा, खरा सिक्का।''

मैंने जेब से सिगरेट की डिब्बी निकाली। दो सिगरेट निकालीं। दोनों एक साथ मुँह में रखकर सुलगायीं। एक मून को दे दी। मून ने सिगरेट लेकर कश लिए। मैंने भी।

''कामिल से कब मिल पाएँगे?''

मैंने सब बात कर रखी है। सिगरेट ख़त्म करो तो फिर खाना खाते हैं। उसके बाद चलते हैं।'' पर सिर्फ़ दस मिनट।

''दाक्षायणी से मिले?'' मैंने मून को देखा।

''नहीं।''

''कामिल ने कभी कुछ कहा?''

''नहीं ... मैं खाना लगवाता हूँ।'' मून उठ गया। शायद उसे दाक्षायणी की बात करना अच्छा नहीं लगा।

जेल में मून उसी तरह घूमता रहा जैसे कोई अपने घर में घूमता है। उसने एक अलग कमरे में मेरे और कामिल के मिलने का इन्तजाम कर दिया था। कमरे में मुझे छोड़ कर वह बाहर चला गया। कुछ देर बाद लौटा तो कामिल उसके साथ था।

कामिल बदला नहीं था। उसकी दाढ़ी बस थोड़ी बढ़ी थी। चेहरा पतला और बालों का एक हिस्सा सफ़ेद हो गया था। मुझे कुछ क्षण हैरानी से देखता रहा, फिर हँसता हुआ मुझसे लिपट गया। ज़ोर से भींचा उसने मुझे फिर छोड़ कर मून की तरफ़ घूमा।

''तुमने बताया नहीं?''

''फिर कैसे तुम्हें इस तरह हँसते देखता?''

''सच बिजन...'' वह फिर मुझसे लिपट गया। मैं भी उसे जकड़े हुए था।

''तुमने पत्र क्यों नहीं लिखा?'' मैं फुसफुसाया।

''इसलिए कि तुम आओ।'' कामिल मुझसे अलग हो गया, ''मुझे पता था तुम आओगे। बहुत मन था तुम्हें देखने का।''

''तुम बैठो मैं चाय भिजवाता हूँ।'' मून बाहर चला गया। कामिल ने मुझे सोफे पर पास बैठा लिया।

''कैसे हो बिजन?'' कामिल ने मेरी हथेली दबायी। उसकी आँखों में पानी था, ''तुम्हें मेरे बारे में सब पता लग गया होगा।''

''हाँ।''

''ये लोग समझते नहीं बिजन। तुम समझोगे। मैं जानता हूँ, मैं क्या कर रहा हूँ। मैं सचमुच यहाँ बहुत सुखी हूँ। छूटने को मैं जब चाहूँ छूट सकता हूँ। कुछ भी नहीं है केस में। कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। जो है वह पुलिस का दरोगा है। उसे ख़ुद जवाब देना मुश्किल होगा कि वह वहाँ क्या कर रहा था? कैसे उसे पता लगा

कि मैंने शंकरिया का क़त्ल कर दिया है ? उसके पास हथकड़ी क्यों थी ? पर मैं चाहता हूँ यहाँ कुछ दिन रह लूँ। यह धर्मस्थल मेरे अन्दर हमेशा के लिए मर जाए। मैं इसके लिए मर जाऊँ। मुझे सब भूल जाएँ। फिर एक नया जीवन शुरू करूँगा।'' कामिल की हथेली में मेरी हथेली थी। ''तुम समझ लोगे बिजन... एक गहरी थकान के बाद की नींद का अर्थ। यह जेल वही नींद है मेरे लिए।''

''फिर क्या करोगे ?''

''तुम बताओ ?''

''मेरे साथ चलना। मैं तुम्हें ले चलूँगा।''

''वहाँ क्या करूँगा बिजन... हाँ.. यहाँ ज़रूर कुछ करना चाहता हूँ। तुम्हें याद है बाबू ने उस रात तुमसे क्या कहा था ? मैंने भी तुम्हें आख़िरी पत्र में वही लिखा था। किसी विराट की शरण में जाऊँगा, ऐसा विराट जिसका न आदि हो, न अन्त, न जन्म न मृत्यु...।''

''क्या करोगे ?''

''विश्वास करोगे ?''

''कभी नहीं किया है ?''

कामिल ने फिर मेरी हथेली दबायी।

''मूर्ति बनाना सीखूँगा। फिर वह मूर्ति पूरी करूँगा जो बाबू छोड़ गए हैं। चेहरा तो वह बना ही गए हैं। आगे मैं बनाऊँगा। सोने का अँगूठा... नाखून के नीचे नन्हा काला तिल...।''

''दाक्षायणी से मिले फिर ?''

''नहीं...उस रात उसने जो पूछा था मैं उसका उत्तर नहीं दे पाया। पर उसका चेहरा बना कर बाबू मुझे उत्तर दे गए हैं। यह मूर्ति बनाकर आख़िरी बार जाऊँगा उसके पास। शायद उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाए।''

''शायद वह अपना वचन पूरा करे।''

''शायद!'' कामिल ने मेरा हाथ छोड़ दिया। वह उठ गया। आँखों का पानी पोछा उसने।

''मैं मून से कहता हूँ। मेरा कमरा खोल देगा वह। तुम रुको वहीं।''

''नहीं'' मैं भी उठ गया, ''मैं अभी लौट जाऊँगा। तुम्हारे लिए कुछ करना होता तो लम्बा रुकता। यही सोच कर आया था। पर अब नहीं।''

मून एक लड़के के साथ चाय ले आया।

हम सबने चाय के गिलास ले लिए। चुपचाप चाय पीते रहे हम।

''तुम मुझे पत्र लिखना। सब बताते रहना अब।'' मैंने कामिल से कहा।

''हाँ, अब लिखूँगा।''

''और तुम... मुझे फ़ोन करते रहना।'' मैंने मून से कहा।

''हाँ करूँगा।'' मून ने कहा।

गिलास छोटे थे। मैंने चाय ख़त्म कर दी। कामिल ने, मून ने भी।

कामिल मुझे कुछ दूर छोड़ने आया फिर रुक गया।

''अब और आगे नहीं।''

मैं भी रुक गया।

''तुम अब वही हो जो सचमुच तुम थे।'' मैंने कामिल से कहा, ''सच तो यह है तुम कभी इस धर्मस्थल के लिए बने ही नहीं थे।''

कामिल कुछ नहीं बोला! उसने अपनी गीली आँखें छुपाने के लिए चेहरा घुमा लिया।

मैंने आख़िरी बार कामिल को देखा फिर चुपचाप बाहर निकल गया।

बाहर आकर मैं टैक्सी में बैठने लगा तो मून रोने लगा। मैंने मून को चिपका लिया। मून एक झटके से मुड़ा और धर्मस्थल के अन्दर चला गया। मैं टैक्सी में बैठ गया। उसने गाड़ी बढ़ा दी। कुछ दूर बाद मैंने मुड़कर शीशे से देखा। धर्मस्थल का ऊपरी हिस्सा दिख रहा था।

उसके सबसे ऊँचे पत्थर पर लगे लोहे के टुकड़े पर एक गरुड़ बैठा था। नीचे की दुनिया को चौकन्नी निगाहों से देखता हुआ। फिर वह उड़ा और विशाल पंखों को फैलाकर धर्मस्थल के ऊपर चक्कर लगाने लगा।

•••

धर्मस्थल' में कथावाचक है विजन, जो इंजीनियर होकर विदेश में जा बसा है। कथानायक कामिल का बालसखा। कामिल की पत्नी न बन सकी प्रेयसी-सी है दाक्षायणी; जो बेहद महत्त्वाकांक्षिणी है; और जिसकी मुखमुद्रा, मुद्राओं (धन) के दर्शन से ही, लगता है, खिलती-खुलती है। यूँ उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र है आकर्षक व्यक्तित्व का धनी कामिल का मूर्तिकार पिता! यह ऐसा मुर्तिकार है जो अपनी दृष्टि की भास्वर निर्मलता, सोच की उदग्र उदात्तता के लिए, अपनी सौंदर्योन्वेषिनी दृष्टि के लिए, मूर्तिशिल्प हित हेतु किए गए अपने चिंतन के लिए पाठक की संवेदना में गहरे भीतर जा धँसता है।

प्रियंवद की लेखन-यात्रा में ऐसा धर्मस्थल दुबारा शायद ही संभव हो। यह प्रतीकात्मक रूप में और खुले रूप में भी भारतीय न्याय-व्यवस्था के वधस्थल या क़त्लगाह होते जाने का मारक और बेधक दस्तावेज़ है। यह आयातित भारतीय दंड-संहिता, जो साक्ष्यों पर अवलंबित है और हमारे न्यायालयों की संविधान सी है, में वर्णित और अदालतों में जारी साक्ष्य की पूरी प्रविधि पर प्रश्न खड़ा कर देता है। साक्ष्यों का महत्त्व वहाँ होता है जहाँ गवाह पढ़े-लिखे और ईमानदार हों। बिकी हुई गवाहियाँ न्याय को हत्यारा बना देती हैं।

इतनी ख़ूबसूरती से इस उपन्यास को रचा गया है कि अचरज होता है कि मूलत: इतिहासविद माने जानेवाले प्रियंवद, मूर्तिशिल्प के कितने गहरे जानकार हैं; सौंदर्यबोध के कितने तल-स्तर पहचानते हैं; कितनी भाषिक सधाव वाली दार्शनिक मनोदशा है उनकी।

धर्मस्थल में इतना ही भर होता तो शायद आज के नज़रिए से यह अप्रासंगिक हो जाता लेकिन कचहरी के भीतर होते घात-प्रतिघात, वकील-जज-मुवक्किल की दाँव-पेंच भरी बारीक जानकारियाँ भी प्रियंवद पाठकों को परोसते चलते हैं। पाठक स्तब्ध रह जाता है कि कहीं वकील काले कौव्वे तो नहीं, जज जल्लाद तो नहीं? मुवक्किल, कचहरी के मकड़जाल में फँसा, मरता निरीह कीड़ा तो नहीं?

निश्चय ही यह उपन्यास अपनी अंतर्वस्तु के लिहाज से भी हिन्दी की बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी।

मूल्य : 110/-

ISBN 978-93-80044-65-1

9 789380 044651

अंतिका प्रकाशन
सी-56/ यूजीएफ-4
शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II
ग़ाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)